सिंहासन का संन्यास

डॉ. अमरेन्द्र

सिंहासन का संन्यास

डॉ. अमरेन्द्र

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : ९७८.८१.८७८५५.६३.७

प्रथम संस्करण
२०१६

सर्वाधिकार ©
लेखकाधीन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)-८४२ ००१
फोन : ०९३४२७९९५७, ०९९०५२९२८०१
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www. samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर-२७, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-९२
फोन : ०९९११४७८६६८

शब्द-संयोजन
सतीश कुमार

आवरण
www.newhdwallpapers.in से साभार

मुद्रक
बी.के. ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
२००.०० (दो सौ रुपये मात्र)

Sinhasan Ka Sanyash
By Dr. Amrendra Rs. 200/-

अपने पिताश्री

नरसिंह प्रसाद सिन्हा

की स्मृति में

जो रंगमंच के कुशल निदेशक ही नहीं,

'जात्रा' लोक नाटक के सिद्ध शिल्पी भी थे ।

—अमरेन्द्र

नाटक-क्रम

१.	अनमिल आखर अर्थ न जापू	७
२.	सिंहासन का संन्यास	२२
३.	बिहार का बब्बर	३३
४.	गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी	४३
५.	रास्ते और भी हैं	५७
६.	दरसो-परसो घन, बरसो !	६६
७.	उसका महाभारत	७६
८.	आकाशदीप	८४
९.	अंधेरी घाटी की सुरंग	९६
१०.	अमृतकुंभ मंदार	१०५
११.	सखि, वसन्त आया	१२९
१२.	ऊँ श्री चित्रगुप्ताय नमः	१३८
१३.	फुलवा-कटोरवा	१४९

निवेदन

यह तो अच्छा हुआ मेरे छोटे बेटे अभिनन्दन ने मुझसे कहा कि मेरे रेडियो नाटक, मेरी कहानियों और कविताओं से किसी भी तरह कम नहीं, बल्कि नाटकों में पाठकों के लिए बहुत कुछ है, जो शायद मेरी कविताओं और कहानियों में ना मिले ।

बेटे की बात सुनी, तो वर्षों पूर्व लिखे अपने एकाध नाटक को पढ़ गया। अभिनन्दन की बातें एक हद तक मुझे भी सही लगीं, तो अपने उन प्रसारित रेडियो नाटकों की तलाश शुरू की, और तब पता चला कि प्रसाद की कृति 'कामायनी' और गुप्त जी की 'यशोधरा' के नाट्य रूपान्तर की पांडुलिपियाँ खो चुकी हैं । बहुत दुख हुआ । दुख तो और भी घातक हो गया, जब गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' का रेडियो रूपान्तर भी नहीं मिला था । किराये के मकान को बदलने में सबसे ज्यादा नुकसान मेरे साहित्य को ही पहुँचा था ।

लगभग तीन दर्जन रेडियो नाटकों में कुछ की पांडुलिपियाँ ही मिल सकीं, जिन्हें अब आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ, इस भय से कि कहीं ये सम्पत्तियाँ भी मुझसे न छिन जाएँ ।

संग्रह में संकलित रेडियो नाटकों में 'अनमिल आखर अर्थ न जापू' ही एक ऐसा रेडियो नाटक है, जिसका प्रसारण नहीं हुआ है, और कि जो शिवपूजन सहाय की कहानी 'कहानी का प्लॉट' का रेडियो नाट्य रूपान्तर है, बाकी तो सभी आकाशवाणी से प्रसारित नाटक ही है ।

आभारी हूँ मैं, अपने पुत्र और पुत्रियों का, खास कर विभा (पत्नी) का, जो बीच-बीच में मेरे इन नाटकों की प्रशंसाएँ कर, मुझमें इस बोध को भरा कि मेरे ये रेडियो नाटक प्रकाशित होकर मुझे नाटक के क्षेत्र में भी स्थापित करेंगे, और इसी भ्रम में आ जाने के कारण ही यह 'सिंहासन का संन्यास' भी आ गया । अब तो निर्णय आपके हाथों में है ।

सम्पर्क : सम्पादक/वैखरी
लाल खां दरगाह लेन, सराय,
भागलपुर ८१२००२ (बिहार)
दूरभाष : ०९९३९४५१३२३ (मो.)

5/1/2016

अनमिल आखर अर्थ न जापू

[घोड़े की हिनहिनाहट।]

झारखण्डी : वाह दारोगा जी, वाह। घोड़ी है तो आपकी । कितने में खरीदी थी इसे ?

दारोगा : (गौरव से) महज सात रुपये की है ।

झारखण्डी : मगर कान काटती है तुर्की घोड़े की—कम्बख्त बारूद की पुड़िया है ।

दारोगा : इसमें क्या शक । बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर दाँत गड़ाए रह गए, मगर मैंने सबको निंबुआ नोन चटा दिया ।

[हिनहिनाहट।]

इसी घोड़ी के चलते मेरी तरक्की रुक गई ।

झारखण्डी : लेकिन आखिरी दिन तक आप अफसरों के घपले में नहीं ही आए।

दारोगा : अरे झारखण्डी जी, इसी घपले में नहीं आने के कारण तो मैं हर तरह से काबिल, मेहनती, इमानदार, चालाक, दिलेर और मुस्तैद होते हुए भी दारोगा का दारोगा ही रह गया ।

[हिनहिनाहट।]

सिर्फ घोड़ी की मुहब्बत से ।

झारखण्डी : तो, घोड़ी ने भी आपका खूब साथ निभाया है, दारोगा जी; आगे भी साथ निभायेगी । (हिनहिनाहट) अच्छा तो दारोगा जी, मैं अन्दर चलूँ,

दारोगा : छोटे भैया से मिलना है क्या ?

झारखण्डी : हाँ-हाँ, उन्हीं से मिलना है । आपसे मिलना होता, तो थाने में ही जाकर नहीं मिलता ।

[सम्मिलित हँसी।]

दारोगा : (हँसते- हँसते) हाँ- हाँ, जाइए, भाई साहब अपने बरामदे पर ही अभी

हैं ।

[दृश्यांतर।]

झारखण्डी : अनमिल आखर अर्थ न जापू, यानि मुंशी जी को मेरा नमस्कार !

मुंशी जी : (उल्लास में शब्दों पर बल देते हुए) नमस्कार-नमस्कार !

झारखण्डी : लेकिन एक बात मैं कहूँ आपसे !

मुंशी जी : अरे एक बात क्यों, सौ बात कहो ।

झारखण्डी : आपका यह इतना बड़ा नाम बोलने में ऐसा लगता है कि मेरी जीभ लटपटा कर चिरा जायेगी ।

मुंशी जी : (हँसी) अरे, तो इसमें क्या रखा है । तुम मुझे सिर्फ मुंशी जी ही कहा करो, झारखण्डी ।

झारखण्डी : यह रही न बात, मुंशी जी ।

मुंशी जी : अरे-अरे वहाँ क्यों, यहाँ बैठो झारखण्डी, इधर । अरे इतनी बड़ी गद्दी क्यों लगवाई है, तुम लोगों के लिए ही न ।

झारखण्डी : सो तो है ही, मुंशी जी । लेकिन आज चिलम की खुशबू नहीं उठ रही है ।

मुंशी जी : अरे, दो चिलम तो कुछ देर पहले ही खत्म हुई हैं ।

झारखण्डी : अकेले-अकेले ?

मुंशी जी : नहीं, कई के साथ, झब्बू और धुरखेली भी आये थे ।

झारखण्डी : तो, एक बार और हो जाए

मुंशी जी : हर्ज ही क्या है । गाँजा तो वह तैयार पड़ा ही है । सामने रखे इत्र में मिलाकर लो, फिर मजा देखो। (अन्तराल) यह इत्र नहीं, वह, वह।

[अन्तराल।]

झारखण्डी : (साँस खींचते हुए) अरे वाह । इतना बढ़िया इत्र । कभी जिन्दगी में ऐसी खुशबू नहीं पाई । कहाँ से मंगाया है ।

मुंशी जी : (गर्व) कन्नौज से मंगाया है । अब जरा मूँ लगाकर देखो, झारखण्डी, तब कहना ।

झारखण्डी : कैलाशपति, मिट्टी पर लुढ़के लाखपति।(चिलम खींचने की ध्वनि) वाह (नशा का स्वर) एक ही दम में दुनिया मिल गई ।

मुंशी जी : लेकिन झारखण्डी, मालूम है न, गाँजे का दम, दम भी बाहर करके रख देता है । (जोरदार हँसी।)

मुंशी जी : अच्छा झारखण्डी, अबकि जेठ में आ रहे हो ना ?

झारखण्डी : क्यों इस जेठ में कोई विशेष इत्र चलेगा क्या ?

मुंशी जी : अरे नहीं रे । नए साल का जलसा होगा । भूल गये क्या ? तुम तो जानते ही हो कि मैं हर नये साल में एक भारी जलसा का आयोजन करता हूँ । जेठ में ही होता है ना ।

झारखण्डी : वाह, तो महीने पहिले से ही निमंत्रण !

मुंशी जी : वह तो कहना ही पड़ता है न, कहीं लोग भूल नहीं जाएँ (हँसी।)

झारखण्डी : अच्छा मुंशी जी, अब कल सुबह आ जाऊँगा । अभी तो मुझे नींद की काफी जरूरत है । राम, राम (गुनगुनाते जाना।)

मुंशी जी : जाओ झारखण्डी, अब तो अकेले ही मुझे चिलम थामे रहना होगा। (दो-तीन बार हल्के कश खींचने के बाद एक जोरदार कश की ध्वनि) आह (संतोष और नशे का स्वर।)

पत्नी : (पायलों की आवाज) आपने यहाँ चिलमचियों का अखाड़ा बना रखा है। मुँह और बरामदे को कारखाना बना दिया है । बस वही आग, बस वही धुआँ !

मुंशी जी : (मजाक) अरी, क्या बात है भगजोगिनी की माँ । अब हमलोगों के लड़ने के दिन कहाँ रहे । प्यार से बात करो, प्यार से ।

पत्नी : क्या प्यार से बातें होंगी जी । (अन्तराल) चलिए खाना तैयार है । खा लीजिए !

मुंशी जी : अब मैं उठ नहीं सकूँगा । तुम मेरे हिस्से का बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ यहीं लाकर रख दो । खा लूँगा ।

पत्नी : ठीक है, ला देती हूँ (गुस्सा) लेकिन मैं पूछती हूँ, जब यह चिलम आपको उठने लायक नहीं रहने देती, तो इसे किशन की बाँसुरी की तरह मुँह से क्यों लगाए रहते हैं ? जो चिलम उठने लायक नहीं रहने देती, वह समाज की नजरों में कैसे उठने देगी ।

मुंशी जी : देवी, प्रवचन बंद । बस मेरे हिस्से के बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ....।

पत्नी : (गुस्सा) हाँ-हाँ समझी, आपके हिस्से के बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ, लेकिन जान लीजिए, ये बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ भी गाँजे की हानि को नहीं भर सकतीं । हाँ ।

मुंशी जी : (नशीला स्वर) बस-बस, बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ ।

पत्नी : हूँह । (पदचाप/फेडआउट।)

[दृश्यांतर।]

[कई लोगों का हँसी-ठहाका, भिन्न-भिन्न कोनों से । खाते समय के बीच की हल्की हँसी, अस्पष्ट बातें जारी।]

चौरंगी : वाह । मुंशी जी का यह जलसा तो गाँवों में याद रखा जायेगा ।

बैरागी : गाँव में ही क्यों । मैंने तो ऐसा जलसा बड़े-बड़े जमींदारों के यहाँ नहीं देखा है । कम-से-कम मेरी उम्र अस्सी की तो हो ही गई है । सच कहता हूँ, ऐसा जलसा नहीं देखा ।

चौरंगी : आखिर हो भी क्यों नहीं । मुंशी जी के बड़े भाई दारोगा जो हैं । कौन है गाँव भर में, जो दारोगा साहब से अंग्रेजी बोलने में जरा भी मुकाबला कर ले ।

बैरागी : (मुँह में भोजन रखते हुए) और अंग्रेजी जानने वालों की आज संख्या है भी कितनी ! आने वाले वर्षों में तो धर्मशास्त्रों को जानने-समझने वालों की संख्या के बराबर रह जायेगी ।

चौरंगी : (कुछ पल मुँह में कुछ चबाते हुए) दारोगा साहब उर्दू दाँ भी ठहरे ।

बैरागी : मजे की बात है कि दारोगा जी ने आठ-दस पैसे का करीमा खालिक बारी पढ़कर जितना पैसा कमाया है,

चौरंगी : कि आने वाले वर्षों में कॉलेज और अदालत की लाइब्रेरियाँ चाट कर भी वकील नहीं कमा पायेंगे (हँसी।)

मुंशी जी : (गौरव) क्या भाई साहब, जलसे में किसी तरह की कमी ?

कई स्वर : (दरबारी स्वर में) क्या मुंशी जी, आप भी बात करते हैं । ऐसा जलसा तो बड़े-बड़े जमींदारों के भी बूते की बात नहीं है ।

चौरंगी : क्या शोरबा एक नम्बर का बना है !

बैरागी : किसकी देख-रेख में बनवाया है यह मुर्गी मुसल्लम ?

मुंशी जी : भागलपुर से मंगाया है, जनाब ।

चौरंगी : कुरमे के स्वाद का भी क्या कहना । अँगुली बचा-बचा कर खाना पड़ रहा है ।

मुंशी जी : और पुलाव के बारे में तो आपने कुछ कहा भी नहीं ।

बैरागी : अरे मुंशी जी । जिंदगी में पुलाव तो हजारों बार खाया; लेकिन ऐसा पुलाव तो जी ने पहली बार चखा है ।

चौरंगी : आधा घी-आधा चावल । शुद्ध घी और एक नम्बर के तुलसी मंजरी की सुगंध से मन अघा गया, मुंशी जी ।

बैरागी : अजी ऐसा मुँह मार दिया है कि पूछिए मत । यह छँकी हुई मछली,

ये छौंकी गई गाढ़ी दाल, यह घी से उफनता दही, ये सलाद!

चौरंगी : उस पर प्याला भर-भर कर ये रसगुल्ले और छेना । आदमी खाए तो कैसे, आखिर अपना ही तो पेट है, मुंशी जी ।

मुंशी जी : अरे जितना हो सके खाइए । अच्छा, जरा मैं नये मेहमानों को देखूँ।

[पदचाप/फेडआउट।]

चौरंगी : लेकिन जो भी कहो । मुझे यह फिजुलखर्ची बिलकुल फालतू लगती है ।

बैरागी : ठीक ही कहते हो चौरंगी । रईसों की इस फिजूलखर्ची से तो असली मौत होती है गरीबों की; जिस फिजूलखर्ची के कारण गरीब सारी कमाई दे कर भी आवश्यकता भर दैनिक जरूरतों की चीजें नहीं खरीद पाते ।

चौरंगी : वैसे जो भी कहो, बैरागी, मुंशी जी के इस जलसे का कोई जोड़ नहीं है, इस इलाके में ।

बैरागी : करते तो और । लेकिन जिनकी कमाई की बदौलत यह जलसा है, बेचारा दारोगा जी आज हप्ते भर से बहुत बीमार हैं । थे तो वह कई महीने पहले से ही —मुंशी जी कैलाश सिंह से बात कर रहे थे, तो मैंने भी जाना।

चौरंगी : अरे चौरंगी, इस सलाद ने क्या बिगाड़ा है । जब सब हजम ही कर गये, तो इसे भी उदर में रख ले ।

सम्मिलित हँसी (अन्य भोजन करते लोगों की आवाजें।)

[करुण संगीत का उभार।]

मुंशी जी : (स्वर में घबड़ाहट) अब बड़े भाई की कैसी तबीयत है, वैद्यजी ?

वैध जी : मुंशी जी, नाड़ी अब एकदम रुक-रुक कर चल रही है। दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि दारोगा जी के बचने की अब कोई उम्मीद नहीं। कुछ मिनटों के मेहमान रह गए हैं ।

मुंशी जी : (रुआँसे स्वर) यह क्या कह रहे हैं, वैद्य जी !

स्त्री स्वर : मुंशी जी, गंगा जल बड़े भाई के मुँह में डाल दीजिए ।

मुंशी जी : नहीं ,नहीं, भैया, भैया (चीखते हुए) भैया.....(रुदन।)

[करुण संगीत के साथ दृश्य परिवर्तन संगीत।]

चौरंगी : मुंशीजी का बहुत खाया, पीया है, इसी से उनकी बुरी हालत अब सहन नहीं होती ।

बैरागी : सो तो ठीक कहते हो, चौरंगी । जब से बहिया बह गई है तब से

चारों ओर उजाड़ नजर आने लगा है । दारोगा साहब के मरते ही सारी अमीरी घुसड़ गई ।

चौरंगी : चिलम के साथ-साथ चूल्हा-चक्की भी ठंडी हो गई है ।

बैरागी : हाँ, जो जीभ एक दिन बटेरों का शोरबा सुड़कती थी, वह अब सराह-सराह कर मटर का सत्तू सरपोटने लगी है । मुंशी जी के क्या दिन फिरे हैं ।

चौरंगी : इस तरह क्यों कह रहे हो वैरागी ? सब पर दुख आता है ।

बैरागी : अरे, उसी दुख की तो बात कह रहा है । कहाँ चपातियाँ चबाने वाले दाँत, अब चन्द चने चबा कर दिन गुजारने लगे हैं । क्या करोगे चौरंगी, थानेदार की कमाई और फूस का तापना दोनों बराबर है ।

चौरंगी : तुम व्यंग्य करते हो, बैरागी ? मुंशी जी की करुण स्थिति देखोगे, तो तुम भी कातर हो जाओगे ।

बैरागी : मुझे भी मालूम है चौरंगी कि जो मुंशी जी चुल्लू से इत्र लेकर अपनी पोशाकों में मला करते थे, उन्हीं को अब अपनी रूखी, सूखी देह में लगाने के लिए चुल्लू भर कड़ुवा तेल मिलना भी मुहाल हो गया है।

चौरंगी : हाँ बैरागी, शायद किस्मत की चादर का कोई रफूगर ही नहीं है, और उसका तो और भी कोई नहीं जो भविष्य के दुष्परिणामों को सोचे बिना जवानी में लूट लाओ कूट खाओ के हिसाब से चलता है ।

बैरागी : जरा किस्मत की दोहरी मार तो देखो, दारोगाजी के जमाने में मुंशी जी के चार-पाँच लड़के हुये, पर सबके सब सुबह के चिराग हो गये। जब बेचारे की पाँचों अंगुलियाँ घी में थीं, तो कोई खाने वाला नहीं था, और जब दोनों टाँग दरिद्रता के दलदल में आ फँसी, और ऊपर से बुढ़ापा भी कंधे दबाने लगा, तब कोढ़ में खाज की तरह लड़की भी पैदा हो गई ।

[दृश्यांतर।]

मुंशी जी : आइए शिवपूजन जी, आइए अब तो इतना बूढ़ा हो गया हूँ कि ठीक से दिखाई भी नहीं पड़ती ।

शिवपूजन : और सब तो ठीक है न, मुंशी जी ?

मुंशी जी : ठीक क्या होगा, शिवपूजन बाबू । मेरी किस्मत भी बड़े भाई दारोगा जी की घोड़ी से कुछ कम स्यावर नहीं है ।

शिवपूजन : अरे, आपने ठीक ही याद दिलाई, दारोगा साहब की वह घोड़ी क्या

हुई ?

मुंशी जी : वह तो एक गोरे अफसर के हाथ खासी रकम पर..... घोड़ी को ही बेचकर तो मैं अपने बड़े भाई से उऋण हो सका । अगर पहले ही कहीं घोड़ी को भी बेच खाए होते, तो उनके नाम पर एक ब्राह्मण भी न जमता । बड़े भाई घोड़ी को कितना मानते थे । किन्तु घोड़ी ने उनकी मुहब्बत का अच्छा नतीजा दिखाया । उनके मरने के बाद धूमधाम से उनका श्राद्ध कर दिया । (अन्तराल) अरे, बातों में मैं यह भूल ही गया कि आप (हकॉते हुए) बेटी भगजोगनी, जरा शिवपूजन बाबू के लिए दो खण्ड कसैली ले आना !

शिवपूजन : अरे, कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं ।

मुंशी जी : इसमें कष्ट उठाने की क्या है । (दुख) क्या कीजिएगा, सहाय जी; एक वे दिन थे, जब अतिथियों की सेवा के लिए मैं.....

शिवपूजन : आप व्यर्थ ही परेशान न हो, मुंशी जी ।

भगजोगनी : ये लो, बाबू जी।

मुंशी जी : मुझे नहीं, भगजोगनी बेटी, चाचा जी को दो ।

भगजोगनी : लीजिए, चाचा जी !

शिवपूजन : ठीक है, जाओ । मुंशी जी, यह आपकी बेटी कितनी बड़ी हो गई, ग्यारह बरस की तो हो ही गई होगी ।

मुंशी जी : हाँ । बड़े भाई साहब की मृत्यु के बाद ही इसका जन्म हुआ था । देख लिया न शिवपूजन बाबू, सुन्दरता में यह जैसे अंधेरे में दीपक है, वैसी अभागिन भी । जनमते ही माँ के दूध से वंचित होकर टूअर हो गई है ।

शिवपूजन : इसकी अब शादी-ब्याह करके आप मुक्त क्यों नहीं हो जाते हैं, इस बुढ़ापे में ? इसे तो कोई भी सम्पन्न परिवार अपनी बहू बनाना चाहेगा। ऐसी सुघड़ लड़की किसी ने देखी न होगी ।

मुंशी जी : नहीं शिवपूजन बाबू, नहीं । तिलक-दहेज के जमाने में सुन्दरता-सुघड़ता कोई अर्थ नहीं रखती । सच पूछिए तो इस तिलक-दहेज के जमाने में लड़की पैदा करना ही बड़ी भारी मूर्खता है ।

शिवपूजन : वैसे आपको एक लड़का होता, तो यह परेशानी नहीं उठानी पड़ती ।

मुंशी जी : लड़का (व्यंग्य की हँसी) अरे सहाय जी, जब घी और गरम मसाले उड़ते थे, तब तो हमेशा लड़का ही पैदा करता रहा, मगर अब मटर के सत्तू पर भला कहाँ से बेटा निकाल लाऊँ !

शिवपूजन : लेकिन बहुत चिंतित होने की बात नहीं है, मुंशी जी । अब तो इस युग में अबला ही प्रवल हो रही है ।

मुंशी जी : हाँ, मैं भी महसूस कर रहा हूँ कि पुरुषों को स्त्रीत्व खदेड़े जा रहा है । लेकिन शिवपूजन बाबू, भगजोगनी का दुख मेरे बचे हुए पुरुषत्व को रुला-रुला देता है । मुझे मेरी बेटी का दुःख किसी तरह नहीं देखा जाता (आवाज में करुणा।)

शिवपूजन : धैर्य रखने की जरूरत है, मुंशी जी । सब कोई जानता है कि अमीरी की कब्र पर पनपी हुई गरीबी की घास बड़ी जहरीली होती है ।

मुंशी जी : शिवपूजन बाबू, आप तो कहानीकार हैं, क्या आप मेरे दुःख पर कुछ नहीं लिख सकते ।

शिवपूजन : (गंभीरता से) लिखता, लेकिन मैं क्या बताऊँ । भाषा में गरीबी को ठीक-ठीक चित्रित करने की शक्ति नहीं होती, भले ही राजमहलों का ऐश्वर्य, लीला और विलास-वैभव के वर्णन में यह समर्थ हो । लेकिन इतनी बात है, मैं आनेवाले लेखकों के लिए एक कहानी का प्लॉट जरूर छोड़ जाऊँगा, जिस पर वे कहानी और नाटक लिख सकें। अच्छा मुंशी जी, अभी मैं चलूँ । राम, राम !

मुंशी जी : राम, राम शिवपूजन बाबू ।

[दृश्यांतर।]

मुंशी जी : (पश्चाताप) अगर मेरे बड़े भाई साहब बरकरार होते, तो गुलाब की फुलानी ऐसी लड़की को हथेली का फूल बनाए रहते । जरूर किसी रायबहादुर के घर इसकी शादी कराते (अन्तराल) फिर भी मुझे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए ।

[दृश्यांतर।]

व्यक्ति : (कड़क स्वर में) मैंने कहा न, मुंशी जी, कि मेरे लड़के की शादी आपकी बेटी से नहीं हो सकती, नहीं हो सकती ।

मुंशी जी : देखिए सक्सेना बाबू, (गिड़गिड़ाना) मैं कहता हूँ, आप बड़े-बड़े वकीलों, डिप्टियों और जमींदारों की चुनी-चुनाई लड़कियों से मेरी लड़की को मिला लीजिए कि सबसे सुन्दर जँचती है कि नहीं । इसके जोड़ की एक भी लड़की कहीं निकल जाए, तो इससे अपने लड़के की शादी मत कीजिए ।

व्यक्ति : आप समझते क्यों नहीं । मैनें कहा न कि लड़के की माँ ऐसे घराने में शादी करने से इन्कार करती है जहाँ न सास है, न साला और न बारात की खातिरदारी करने की हैसियत । (पैर पटक कर जाने की ध्वनि।)

[दृश्यांतर।]

नारी स्वर : नहीं जी, हमें आपके घर में अपने लड़के की शादी नहीं करनी ।

मुंशी जी : लेकिन मेरी लड़की में किस बात की कमी है ?

नारी स्वर : मैं खूब जानती हूँ कि गरीब घर की लड़की चटोर और कंजूस होती है, हमारा खानदान बिगड़ जायेगा ।

[दृश्यांतर।]

मुंशी जी : देखिए लाल बाबू, आप मेरी इज्जत रख लीजिए ।

लाल बाबू : (नम्रता से) देखिए मुंशी जी, मुझे आपसे काफी हमदर्दी है, लेकिन हमारे लड़के को तो इतना तिलक, दहेज मिल रहा है, तो भी हम शादी नहीं कर रहे हैं। फिर बिना तिलक-दहेज की तो बात भी हम नहीं करना चाहते ।

[दृश्यांतर।]

[दरवाजे पर दस्तक देने की आवाजें।]

मुंशी जी : (बुढ़ापे का स्वर) भगजोगनी बेटी, जरा देख तो कौन आये हैं ।

भगजोगनी : देखती हूँ बाबू जी ।

[फाटक खुलने की आवाज।]

भगजोगनी : प्रणाम, चाचा जी ।

शिवपूजन : जीती रहो, बिटिया ।

मुंशी जी : अरे कौन है, बेटी ?

भगजोगनी : मैं जरा अन्दर जाकर बताती हूँ कि आप आये हैं। (अन्तराल) पिता जी, वही छड़ी वाले चाचा आये हैं ।

शिवपूजन : (दुःख) आह । बेचारी इस उम्र में भी कमर में एक पतला-सा चिथड़ा लपेटे हुई है जो मुश्किल से उसकी लज्जा ढँकने में समर्थ है । इसके सिर के बाल, तेल बिना बुरी तरह से बिखर कर कड़े हो गये हैं । उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब ढंग की करुण कातर चितवन

है । दरिद्रता राक्षसी ने सुन्दरता सुकुमारी का गला टीप दिया है । हे राम।

मुंशी जी : भाई सहाय जी, दूर क्यों खड़े हैं । अब तो आँखें भी काम नहीं करती हैं ।

शिवपूजन : नमस्कार, मुंशी जी ।

मुंशी जी : नमस्कार भाई, नमस्कार ।

शिवपूजन : और सब सुनाइए । खैरियत तो है ?

मुंशी जी : क्या कहूँ शिवपूजन बाबू, पिछले दिन जब याद आते हैं, तो गम आ जाता है । यह गरीबी की भार इस लड़की की वजह से और भी अखरती है ।

शिवपूजन : वह तो अखरती ही होगी, मुंशी जी; वह भी जब आप पर पिता के साथ-साथ माँ की भी जिम्मेदारी आ पड़ी हो ।

मुंशी जी : देखा ना आपने, इसके सिर के बाल कैसे खुस्क और गोरखधंधारी हो रहे हैं । घर में इसकी माँ होती, तो कम-से-कम इसका सिर तो (अन्तराल) अगर अपने घर में तेल होता, तो किसी घर में जाकर कंघी-चोटी करा लेती । सिर पर चिड़िया का घोसला तो न बनता।

शिवपूजन : धैर्य रखिए, मुंशी जी, समय चक्र में बँधा हुआ लौटता रहता है ।

मुंशी जी : लेकिन जब यह लौटेगा तब तक तो, तब तक तो .....। आप नहीं जानते शिवपूजन बाबू कि मेरी बेटी का भोजन इन दिनों कैसे चल रहा है। गाँव के लड़के, जो झोलियों में चबेना लेकर खाते हुए घर से निकलते हैं, तो यह उनकी बाट जोहती रहती है, उनके पीछे-पीछे लगे फिरती है, तो मुश्किल से दिनभर में एक-दो मुठ्ठी चबेना मिल जाता है ।

शिवपूजन : अपने समाज की आर्थिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि अधिकांश लोगों को इससे भी बदतर जीवन बिताना पड़ रहा है ।

मुंशी जी : शिवपूजन जी, मुझसे भी बढ़कर किसी की बदतर स्थिति हो सकती है क्या ? मेरी बेटी खाने-पीने के समय जब किसी के घर पहुँच जाती है, तो इसकी दीठ लग जाने के भय से घरवालियाँ दुत्कारने लगती हैं । कहाँ तक अपनी मुसीबतों का बयान करूँ, भाई साहब। किसी की दी हुई मुठ्ठी भर भीख लेने के लिए इसके तन पर फटा आँचल भी तो नहीं है, और यह सब मुझे अपनी आँखों से देखना पड़ता है।

शिवपूजन : पुरुष तो दुःख को सहने और विपत्तियों से संघर्ष करने के लिए ही

बना है, मुंशी जी ।

मुंशी जी : लेकिन मेरी उम्र तो अब इन दोनों के ही काबिल नहीं रही । क्या बताऊँ, शिवपूजन बाबू, कभी-कभी एकाध फुला चना-चबेना मेरे लिए भी जब लाती है, तो उस समय हृदय दो टूक हो जाता है । कभी दिन भर घर-घर घूम कर जब शाम को मेरे पास आकर धीमी आवाज से कहती है— बाबू जी भूख लगी है, कुछ तो खाने को दो, उस वक्त आपसे इमानन कहता हूँ, जी यही चाहता है कि गले में फाँसी लगा कर मर जाऊँ या किसी कुएँ-तालाब में डूब मरूँ !

शिवपूजन : बस, यह सब बेटी के विवाह न होने तक ही है ।

मुंशी जी : ओ भाई साहब, इसी को याद करके तो मैं मर नहीं सकता । सोचता हूँ, मेरे सिवाय इसकी खोज-खबर लेने वाला इस दुनिया में अब है ही कौन ! आज अगर इसकी माँ जिंदा होती, तो वह कूट-पीस कर इसके लिए मुट्ठी भर चना जुटाती, किसी कदर इसकी परवरिश कर ही लेती ।

शिवपूजन : आपने भी तो भविष्य के अच्छे-बुरे दिनों का ख्याल, दारोगा साहब के अच्छे दिनों में नहीं किया ।

मुंशी जी : सही है, मैंने भी अच्छी अंधाधुंध कमाई, पर ऐसी बेफिक्री में दिन गुजारे कि आने वाले इन बुरे दिनों की मुतलक खबर ही न रही । वह भी ऐसे थे कि अपने कफन काठी के लिए भी एक खरमुहरा भी न छोड़ गए। अपनी जिन्दगी में ही एक-एक कर सारी चीजें बेच खाई, गाँव भर में ऐसी अदावत बढ़ाई कि आज मेरी ऐसी दुर्गति पर भी कोई रहम करने वाला नहीं; उल्टे सब लोग तानों के तीर बरसाते हैं। एक दिन वह था कि भाई साहब के पेशाब से चिराग जलता था और एक दिन यह भी है कि मेरी हड्डियाँ गरीबी की आँच में मोमबत्ती की तरह धू-धू कर जल रही हैं ।

[दरवाजे पर दस्तक।]

मुंशी जी : कौन है भाई, दरवाजा खुला है अन्दर आ जाइए ।

भूटो मिसिर : मैं हूँ, मुंशी जी ।

मुंशी जी : जरा निकट आओ भाई । क्या कहूँ बाबू साहब, अपनी ही करनी का नतीजा भोग रहा हूँ । मोतिया बिन्द, गठिया और दम्मा ने निकम्मा कर दिया है ।

भूटो मिसिर : मैं हूँ । भूटो मिसिर ।

मुंशी जी : आइए, आइए, मिसिर जी, कहीं से कुछ .....

भूटो मिसिर : हाँ, सिन्हा जी एक लाख तक में तैयार हो गए हैं ।

शिवपूजन : (आश्चर्य का स्वर) अरे सिन्हा जी, और एक लाख !

मुंशी जी : क्या कहें शिवपूजन बाबू, दिनों का फेरा ऐसा है कि जिसका मुँह न देखना चाहिए, उसका भी पिछाड़ देखना पड़ा। महज मामूली हैसियत वाले को भी पाँच हजार तिलक-दहेज फरमाते देख कर जी कुढ़ जाता है—गुस्सा चढ़ जाता है, मगर गरीबी ने ऐसा पंख तोड़ दिया है कि तड़फड़ा भी नहीं सकता ।

भूटो मिसिर : लेकिन क्या कीजिएगा मुंशी जी, लड़का वाला तो लड़का वाला होता है । बिना पैसे लिए लड़का कैसे दे देगा ।

मुंशी जी : हिन्दू समाज के कायदे भी अजीब ढंग के होते हैं । जो लोग मोल-भाव करके लड़के की बिक्री करते हैं, वे भले आदमी समझे जाते हैं और कोई गरीब बेचारा उसी तरह मोल-भाव करके लड़की को बेचता है, तो कमीना कहा जाता है ।

शिवपूजन : आपके दर्द को समझ रहा हूँ ।

मुंशी जी : मैं झूठ नहीं कहता हूँ, शिवपूजन बाबू, मै अगर आज भगजोगनी को बेचना चाहता, तो इतनी कॉफी रकम ऐंठ सकता था कि कम-से-कम मेरी जिन्दगी तो जरूर ही आराम से कट जाती ।

शिवपूजन : लेकिन ऐसा सोचे भी क्यों ?

मुंशी जी : बस यूँ ही कह गया, शिवपूजन बाबू । (अन्तराल) क्या कहते हैं, मै जीते जी हरगिज एक मक्खी भी न लूँगा । चाहें यह कुँवारी रहे या सयानी होकर मेरा नाम हँसाए । देखिए न, सयानी तो हो ही गई है—सिर्फ पेट की मार उकसने नहीं पाती, बढ़न्ती रुकी हुई है। अगर किसी खुशहाल घर में होती, तो अब तक फूट कर सयानी हो जाती। बदन भरने से ही खूबसूरती पर रोगन चढ़ता है । और बेटी की बाढ़ तो बेटे से जल्दी होती है।

भूटो मिसिर : तो सिन्हा जी के बेटे के संबंध में क्या सोच रहे हैं ?

मुंशी जी : क्या सोचूँगा, मिसिर जी !

भूटो मिसिर : तो ठीक है, मैं जाता हूँ । कह दूँगा किसी और की बेटी का उद्धार कर दीजिए ।

[जाने की ध्वनि : फेडआउट।]

शिवपूजन : सुनिए तो मिसिर जी, (अन्तराल) तो, बेटी के लिए कहीं किसी

लड़के को देखा है कि नहीं, मुंशी जी ?

मुंशी जी : अब कहीं से कोई भरोसा नहीं रह गया । अब तो बस एक उम्मीद पर ही जान अटकी हुई है —एक साहब ने बहुत कहने-सुनने पर मेरी बेटी के साथ शादी करने का वादा किया है । देखना है कि गाँव के खोटे लोग उन्हें भी भड़काते हैं या मेरी झांझरी नैया को पार लगने देते हैं ।

शिवपूजन : कौन है ? उसकी उम्र क्या है ?

मुंशी जी : (अत्यधिक कातर स्वर) लड़के की उम्र बड़ी जरूर है, ४१-४२ साल की, मगर इसके सिवा कोई चारा नहीं है । छाती पर पत्थर रखकर अपनी इस राज कोकिला.....अब अधिक क्या कहूँ, शिवपूजन बाबू, अपनी ही करनी का नतीजा भोग रहा हूँ ।

शिवपूजन : अरे, इस तरह पछताने की कोई जरूरत नहीं ।

मुंशी जी : पछता के भी क्या करूँगा । अब मेरे आसूओं में ईश्वर को पिघलाने का दम भी तो नहीं है (बिलखना।)

शिवपूजन : आप विचलित बिलकुल न हों । मैं भगजोगनी के लिए अनुकूल लड़के को ढूँढ़ निकालता हूँ । इसके व्याह का भार मैं लेता हूँ ।

मुंशी जी : शिवपूजन बाबू आप मेरे लिए ईश्वर से भी बढ़कर सिद्ध होंगे ।

[दृश्यांतर।]

शिवपूजन : मैं मुंशी जी की बेटी की बात कर रहा हूँ । जितनी रूपवती है, उतनी ही गुणवती, अश्विनी बाबू ।

अश्विनी : लेकिन शिवपूजन बाबू, दहेज के बिना अब तो सती सावित्री का भी ब्याह न हो सकेगा ।

[दृश्यांतर।]

शिवपूजन : योगेश्वर बेटे, तुम तो विद्वान लेखक हो । समाज-सुधार विषयों पर बड़े शान-गुमान से लेखनी चलाते रहे हो । अगर तुम मुंशी जी की गुणवती, रूपवती बेटी से व्याह कर लें लो, तो एक निर्धन का उद्धार हो जाए ।

योगेश्वर : शिवपूजन चाचा, मैं अपनी लेखनी से समाज सुधारने का प्रयास करता हूँ, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं निर्धन घर में व्याह कर अपना जीवन ही बर्बाद कर लूँ ।

[दृश्यांतर।]

शिवपूजन : आप ही बताइए, राम खेलावन बाबू, अब मैं कहाँ जाऊँ । अपने कितने मित्रों से भी अनुरोध किया कि उस अपूर्व रूपवती दरिद्र कन्या से अपने बेटे का विवाह करके एक निर्धन भाई का उद्धार करें। लेकिन सब ने मेरी बात अनसुनी कर दी ।

रामखेलावन : बिना दहेज के तो सुमंतो सिन्हा जैसे व्यक्ति ही शादी कर सकते हैं। आप उन्हीं से क्यों नहीं मिलते, शिवपूजन बाबू । ३५-३६ वर्ष से ज्यादा के न होंगे । अब तो उनकी पत्नी के मरे दो वर्ष से ज्यादा बीत गए ।

[दृश्यांतर।]

मुंशी जी : सुमंतो बाबू, मुंशी जी की बेटी देखने में जितनी रूपवती है शील-स्वभाव और गुण में भी उतनी ही श्रेष्ठ । आप उससे विवाह कर लेंगे, तो आपके जीवन का सूनापन भी दूर हो जायेगा, और मुंशी जी के बुढ़ापे का दुःख भी ।

सुमंतो बाबू : शिवपूजन बाबू, वह समय गया जब,

टूट टाट घर टपकत खटियो भी टूट
पिय के बाँह नसीब हो तो सुख को लूट

अब तो,

टूट टाट घर टपकत खटियो तक टूट
धन की बाँह नसीब हो सब सुख लूट । ही, ही, ही (हँसी)

[दृश्यांतर।]

सूत्रधार : देख लिया न भैया मेरे, जान लिया न हाल
मुंशी जी के लिए बनी है भगजोगनी जंजाल
बिना रुपैया के रंडुआ भी दुल्हा मिला न हाय
मुंशी जी के संग-संग थक गए शिवपूजन भी, भाय
बूढ़े मुंशी जी की आखिर टूट गई सब आस
मरने को थे, कब तक रखते बेटी अपने पास
अपने उसी बुढ़ापे से मुंशी जी आके तंग
आखिर कर गए ब्याह बेटी का अधबैसू के संग
मिला छियालिस वाला दुल्हा, सुबह हो गई शाम

कौन तस्सली देता उसको, विधि हो जबकि वाम
छाती पर पत्थर रखकर बेटी को दिया बिहाय
अपनी राजकोकिला को पतझड़ के हाथों, हाय
लाठी छिनी बुढ़ापे की, मुंशी जी हुए बेहाल
छोड़ गई बेटी भगजोगनी, चली गई ससुराल ।

[दृश्यांतर।]

शिवपूजन : क्या अघोरी यह घर एकदम उजड़ा हुआ है। मुंशी जी कहाँ चले गए?

अघोरी : शिवपूजन बाबू, लगता है आप गाँव में तीन साल बाद आ रहे हैं ।

शिवपूजन : हाँ, ऐसी ही बात है, लेकिन मुंशी जी और उनकी बेटी भगजोगनी ?

अघोरी : भगजोगनी को तो छियालिस वाला दुल्हा डोला काढ़ कर अपने घर ले गया; कुछ रस्में पूरी करके मुंशी जी को चिन्ता की दलदल से उबार दिया (लम्बी कातर साँस) वैसे बेचारे मुंशी जी की छाती से पत्थर का बोझ तो उतरा, मगर घर में कोई पानी देने वाला भी न रह गया था।

शिवपूजन : तो, क्या वह इस घर को छोड़ कर कहीं चले गए ?

अघोरी : कहाँ जाते भाग्यहीन ? कौन बच गया था उनका ? बुढ़ापे की लकड़ी भी जाती रही । देह भी एकदम लोथ हो गई थी । साल पूरा होते-होते अचानक टन बोल गये (एक करुण संगीत) गाँव वाले ने गले में घड़ा बाँध कर लाश को नदी में डुबो दिया।

शिवपूजन : हे ईश्वर (रुककर) लेकिन भगजोगनी तो ठीक ठाक है न ?

अघोरी : (उपेक्षा से) हाँ, वह जीती है; अब तो वह पूर्ण युवती है । उसका शरीर भरा-पूरा और फुला-फूला है । उसका सौन्दर्य उसके वर्तमान नवयुवक पति का अमूल्य धन है ।

शिवपूजन : (अकचकाते हुए) उसका वर्तमान पति ? आप कहना क्या चाहते हैं?

अघोरी : हाँ, उसका वर्तमान पति । आप नहीं जानते—उसका पहला पति अब इस संसार में नहीं है । दूसरा पति है, उसका सौतेला बेटा ।

शिवपूजन : (विह्वल होकर) हे प्रभो, क्या उसका पहला पति मर गया ! उसका दूसरा पति उसका ही सौतेला बेटा है ? हे ईश्वर ।

[समाप्ति करुण संगीत।]

सिंहासन का संन्यास

[आरम्भिक संगीत।]

दरबारी १ : सुना है, आजकल महाराज भर्तृहरि का मन रानी पिंगला को छोड़कर अन्यत्र लगता ही नहीं ।

दरबारी २ : आखिर लगे भी कैसे ? हमारे महाराज का तो यही मानना है कि संसार में देखने योग्य वस्तु क्या है; वह है—बस मृगनयनी का मुँह। सूँघने योग्य क्या है; वह है—स्त्रियों के मुँह से निकली हुई भाप ! सुनने योग्य क्या है; वह है—प्रेयसी के मधुर वचन। पीने योग्य क्या है ? कामिनी के अधरों का अमृत। छूने योग्य क्या है? सुकुमार प्रिया की देह (वाक्य पर विशेष बल देते हुए) और ध्यान देने योग्य वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है ? वह है प्रेयसी का नव यौवन।

[दोनों दरबारियों की हँसी।]

दरबारी १ : रूपवती का नव यौवन, पुरुषों से क्या-क्या न कराए, क्या-क्या न कहाए ।

दरबारी २ : और आदमी इससे बच भी तो नहीं पाता । तुम्हें याद है उस दिन राजभवन की कविसभा में महाराज ने जो कविता पढ़ी थी, उसका क्या अर्थ था ? (वाक्य को नचाते हुए) गले में मालती फूलों की सुन्दर माला हो, केशर और चन्दन का उबटन शरीर पर लगा हो और हृदय से प्रेयसी का हृदय मिल रहा हो, तो वही असली स्वर्ग है, बाकी जिसे स्वर्ग कहते हैं—व्यर्थ है ।

[सम्मिलित हँसी।]

दरबारी १ : तुमने भी कभी ऐसा अनुभव किया है ?

दरबारी २ : केशर-कुंकुम के उबटन से सुन्दर बनी नारी, हृदय पर मोतियों का भार और नूपुरों से झंकृत चरण, फिर भड़की हुई हिरणी की आँखों

वाली रमणी, किससे क्या नहीं करा लेती ।

दरबारी १ : ठीक कहते हो, मुझे तो लगता है – कवि व्यर्थ ही नारी को अबला कहते हैं । जिस नारी के केवल चंचल कटाक्ष ही इन्द्र आदि देवताओं को मात देते हैं, उसे अबला उल्टी बुद्धि वाले कवि ही कह सकते हैं ।

दरबारी २ : बिल्कुल सही, अगर ऐसा नहीं होता, तो वृहस्पति जैसे ज्ञानी हमारे महाराज, अपूर्व सुन्दरी रानी पिंगला के रूपजाल से इस तरह न बंधे रहते ।

दरबारी १ : तुम तो इस तरह कह रहे हो, जैसे तुमने महारानी पिंगला को देखा है ।

दरबारी २ : नहीं, यह बात नहीं। मेरी प्रिया अन्तःपुर जाती है न, उसीने मुझसे बताया था । और रानी पिंगला ने ही बेसुधी में उससे यह बताया था कि महाराज उन्हें कितना अगाध चाहते हैं (धीमे स्वर में) यह भी बताया था कि महाराज ने रानी पिंगला के रूप पर सैकड़ों छंद लिखें हैं ।

दरबारी १ : (आश्चर्य से) सच !

दरबारी २ : एकदम सच।

दरबारी १ : तो क्या रानी ने वे कविताएँ तुम्हारी प्रिया को भी सुनाईं ?

दरबारी २ : हाँ, और मेरी प्रिया ने फिर मुझे । हू-ब-हू तो नहीं, लेकिन अर्थ तो सुनो! (गला ठीक करते हुए) जब तक हम अपनी प्रियतमा को देख नहीं पाते हैं, तब तक उसे देखने की इच्छा बनी रहती है, जब देख लेते हैं, तब उसे बाहों में भर लेने की इच्छा होती है और जब बाहों में प्रेयसी होती है, तब यही इच्छा होती है कि दोनों इसी प्रकार से आलिंगनबद्ध रहें । (खामोशी।)
क्या हुआ । बातें सुनकर खामोश क्यों हो गये ?

दरबारी १ : (गम्भीर स्वर में) मित्र, तुम्हारी बातें सुनकर यह सोचने लगा था कि हमारे महाराज आखिर किस ओर जा रहे हैं । उस दिन उन्होंने राजकवियों की सभा में जो कहा था, आखिर वह किस ओर संकेत था ?

दरबारी २ : (उत्सुकता से) क्या कहा था ?

दरबारी १ : (पूर्व स्वर में) कहा था – इस परिवर्तनशील और असार संसार में विद्वान पंडितों की दो ही गतियाँ होती हैं या तो तत्वज्ञान रूपी

अमृत का पान करें, या फिर कामिनी के हृदय पर हाथ रखे जीवन व्यतीत करें ।

दरबारी २ : तब मुझे तो यही लगता है कि महाराज तत्वज्ञान छोड़कर दूसरी ही गति की ओर जा निकले हैं । वैसे जो भी कहो, मित्र, हमारे महाराज कविसभा में जब छन्द पढ़ते हैं, तब सभा को ही बाँध लेते हैं । वाह-वाह करती ही रह जाती है, सभा ।

[दृश्यांतर। वाह वाह सामूहिक ध्वनि।]

भर्तृहरि : (पाठ के स्वर में)

कामिनी को निंदते जो पंडित वे ढोंगी-ठग
झूठे हैं वे, सत्य से ना लेना-देना, कोई काज
स्वर्ग तो तपस्या का ही फल होता, वहाँ भी तो
उर्वशी-सी कामिनी का फैला हुआ रूप-राज ।
[वाह-वाह की ध्वनियाँ।]

भर्तृहरि : इस कविसभा में अब अगला छन्द विवेदित है ।

समूह स्वर : स्वागत है ।

भर्तृहरि : (लयबद्ध पाठ)

विश्वामित्र-पारासर ऐसे ऋषि-मुनी भी तो
वायु-जल पीते-खाते मोह से बचे हैं कब ?
तब अन्न, दही, दूध, व्यंजनों को लेने वाले
इन्द्रियों के वशीभूत कैसे ना बनेंगे तब ।
[पुनः वाह-वाह की ध्वनियाँ।]

भर्तृहरि : सारस्वतो, आखिर में एक और छन्द निवेदित हैं, देखिए,

समूह : स्वागत है, स्वागत है ।

भर्तृहरि : (लयबद्ध पाठ)

भावों की चतुरता औ अर्द्धनेत्र का कटाक्ष
मधुर संभाषण के संग आँखें मारना
लाज भरी हँसी और चलना ठुमक चाल
और फिर घूम कर चरण को थामना
ये ही तो आभूषण हैं, चंचल रमणियों की
जिसकी ही दिन-रात करती हैं साधना
और ये आभूषण ही इनके हैं अस्त्र-शस्त्र

रसिकों को बाँधती हैं, पाते प्रेमी यातना ।
[वाहवाही का विपुल शोर, फिर शांति।]

[दृश्यांतर।]

दरबारी १ : सब गये, कविशिरोमणि भर्तृहरि महाराज भी, कवि गण भी, सारे रसिक भी तो उठ-उठ कर गये, अब हमलोग ही यहाँ क्या कर रहे हैं ।

दरबारी २ : तुमने ठीक ही कहा था, मित्र, नई रानी का प्रेम तो हमारे महाराज के लिए सावन-भादो का बादल बन गया है, अब जाने सूरज का कब दर्शन हो (साँस छोड़ते हुए) चलो ।

[दृश्यांतर।]

भर्तृहरि : आज मेरी रानी पिंगला के चेहरे पर यह मलीनता क्यों है ?

पिंगला : (रूठने के स्वर में) महाराज, इस वसंत-काल में आलस्य से भरी कामिनी के चंचल मन को तृप्त करना क्या पुरुष का धर्म नहीं होता ।

[कोयल की कुहुक।]

वसंत—काल में तो कोयल की मधुर आवाज भी विरहनियों का वध करने वाली बन जाती है ।

भर्तृहरि : मुझ पर दोष न मढ़ो, महारानी, आम्र मंजरियों की सुगन्ध से बौराई हुई हवा और उन्मत्त भौंरों का गुंजार, मेरे चित्त को ही कहाँ स्थिर रहने दे रहा है ।

पिंगला : महाराज, राजवाटिका से वही बौराई हवा हमें आमंत्रण दे रही है।

[कोयल की कुहुक।]

भर्तृहरि : तुम्हारी इच्छा का स्वागत है, रानी । वसंत की रात में कोयल की कुहूक सुनना, चाँदनी का ऐश्वर्य- सुख लूटना और प्रेम से शिथिल हुई प्रेयसी के साथ रहना, सौभाग्यशाली को ही प्राप्त होता है । मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ, पिंगले ।

[संगीत प्रभाव/कौवे की चीख।]

पिंगला : महाराज, आपके साथ रहते तो काल का कुछ भी आभास नहीं होता।

भर्तृहरि : हाँ प्रिये, पता ही नहीं लगा—कब वसंत बीत गया ।

पिंगला : देखिए न, राजभवन के बाहर ग्रीष्म का कैसा तांडव हो रहा है; जैसे, सारी पृथ्वी दग्ध हो रही हो। (स्वर भंगिमा बदली हुई) लेकिन, क्या आप के लिए भी ?

भर्तृहरि : प्रिये ! जहाँ फव्वारा युक्त भव्य भवन हो, जहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित पवन बहता हो, सुखद चाँदनी के नीचे पुष्प खिल रहे हों चन्दन चर्चित हस्तवाली मृगनयनी रानी जिसके पास हो, उसे ग्रीष्म पीड़ित नहीं करती, सुख ही देती है ।

पिंगला : ठीक ही कहते हैं आप । आप का संग है, तो ग्रीष्म का खौलता हुआ यह कालकुण्ड भी बर्फ का पलना बन गया है ।

[दृश्यांतर।]

[बादलों की गड़गड़ाहट/झिंगुर की गूंज।]

पिंगला : (हर्ष से) स्वागत है, महाराज का ! मैनें ही बुलावा भेजा था ।

भर्तृहरि : ना भी बुलाती, तो भी मैं आता । आकाश में जब काले- काले मेघ छाए हुये हों, चारों ओर पंख फैलाए मोर नाच रहे हों, बिजली की कड़क के बीच केबड़े की बौराई सुगन्ध फैल रही हो, तब यह पथिक यहाँ नहीं आता, तो कहाँ जाता ।

पिंगला : आप सच कहते हैं, स्वामी ?

भर्तृहरि : पिंगले ! मैं सच कह रहा हूँ —स्त्री जब तक सम्मुख होती है, तभी तक वह अमृत के समान सुख देने वाली होती है, आँखों से ओझल होते ही, वही विरह के कारण, विष सें भी अधिक संताप देने वाली बन जाती है । और मैं तुम्हारे सामीप्य का अमृत पीना चाहता हूँ, पिंगले ।

[दृश्यांतर।]

[घोड़े की हिनहिनाहट के साथ पायलों की नजदीक आती आवाजें।]

घुड़सालपति : आ गई तुम ! आओ पिंगला, तुम्हारे बिना तो मेरा एकदम जी नहीं लगता और जब से तुम महाराज की रानी बन गई हो, तुमसे मिलने-जुलने का अवसर भी तो नहीं मिलता । इस शिशिर ऋतु में एक-पल भी तुम्हारे बिना जीना नहीं चाहता ।

पिंगला : (हँसती हुई) अरे, मैं रोज शाम को तुमसे मिलने आ ही तो जाती हूँ ।

घुड़सालपति : लेकिन मेरी तो इच्छा है .....

पिंगला : ऐसी इच्छा को छोड़ो, मेरे घुड़सालपति । यह जो यहाँ आ जाती हूँ, वही बहुत समझो । तुम नहीं जानते कि हम दोनों के चुपके-चुपके मिलने की भनक, महाराज के छोटे भाई विक्रमादित्य को शायद लग गई है ।

घुड़सालपति : (भय से) क्या ?

पिंगला : (दृढ़ता से) मेरे प्रिये, लेकिन तुम्हें घबड़ाना नहीं है ।

घुड़सालपति : (बेचैनी का स्वर) मैं भी तो जानूँ कि आखिर ऐसे में क्या करोगी?

पिंगला : वह तुम मुझ पर छोड़ दो ।

घुड़सालपति : (विकलता से) कुछ तो रास्ता निकालना ही पड़ेगा, मैं तुम्हारे बिना एक दिन भी नहीं रह सकता ।

पिंगला : (नाज से) मेरे घुड़सालपति, और मैं भी तो तुम्हारे बिना एक पल नहीं रह सकती (खिलखिलाहट।)

[दृश्यांतर।]

पिंगला : (उन्मत्त-सी हँसती हुई) तुम्हें मालूम नहीं, स्त्री प्रेम में उन्मत्त हो कर जिस कार्य को करने में लग जाती है, तब ब्रह्मा भी उसे उस काम से नहीं हटा सकते ।

[पदचाप।]

परिचारिका : महारानी, आप का आदेश पाकर नगरश्रेष्ठी आये हुये हैं ।

पिंगला : उसे बुला लो !

[पदचाप।]

नगरश्रेष्ठी : महरानी ने मुझे किसलिए स्मरण किया है ! आदेश हो !

पिंगला : नगरश्रेष्ठी, तुम्हें कल ही महाराज के दरबार में उपस्थित होना है।

नगरश्रेष्ठी : लेकिन किसलिए महारानी ?

पिंगला : वह भी सुनो ! तुम्हें वहाँ उपस्थित होकर महाराज से यह कहना है कि उनके अनुज विक्रमादित्य के कारण मेरा जीना कठिन हो गया है, क्योंकि कुमार विक्रमादित्य मेरी पुत्री को अपने प्रेमजाल में फँसाने के लिए नित्य दिन मेरे महल के आगे-पीछे चक्कर लगाते रहते हैं ।

नगरश्रेष्ठी : (भय का स्वर) नहीं, नहीं, नहीं । महारानी, मैं ऐसा झूठ कभी नहीं बोल सकता, वह भी विक्रमादित्य जैसे निर्मल, विद्वान राजकुमार

के विरुद्ध, और फिर पुण्य के अवतार भर्तृहरि महाराज के ही समक्ष। नहीं, नहीं, नहीं ।

पिंगला : (गुस्से में) श्रेष्ठी ! तुम्हें मालूम भी है कि तुम किसके आदेश को मानने से इनकार कर रहे हो ? (अन्तराल) श्रेष्ठी, अगर तुमने दरबार में उपस्थित होकर ऐसा नहीं कहा, तो तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा कर, उसे काल भैरव के सामने फेंकवा दूँगी; समझ गये । इसे राज्यादेश ही समझो ।

नगरश्रेष्ठी : (गिड़गिड़ाने का स्वर) ऐसा नहीं कहें, महारानी ।

पिंगला : (गंभीर स्वर) तो ठीक है, जाओ और कल ही तुम महाराज के दरबार में अपने न्याय के लिए उपस्थित होओ ! यह महारानी पिंगला का आदेश है, जाओ !

[दृश्यांतर।]

[झींगुर की झनझनाहट।]

विक्रमादित्य : इस निस्तब्ध रात्रि में देवी तुम कौन हो और मेरे सामने उपस्थित होने का प्रयोजन क्या है ?

देवी : विक्रमादित्य ! मैं नगर की कुलदेवी हूँ । आज भरी सभा में जिस तरह नगर श्रेष्ठी ने तुम्हारे चरित्र को अनैतिक बताया और तुम्हारे लाख समझाने पर भी महाराज भर्तृहरि ने तुम्हारी बातों को झूठा ही समझा, उससे मैं बहुत दुःखी हूँ । मैं जानती हूँ कि तुम एकदम निर्दोष हो ।

विक्रमादित्य : जब मैं निर्दोष हूँ, तो तुम्हीं बताओ, माता कुलदेवी, कि मेरे अग्रज श्री ने मुझ पर अविश्वास क्यों किया ?

देवी : इस संबंध में तुम्हें भी सब कुछ ज्ञात है, विक्रमादित्य, कि आखिर महाराज ने क्यों तुम पर अविश्वास किया । माँसरहित और कृमि युक्त हड्डी को जब एक कुत्ता प्रीतिपूर्वक चबाता है, तब वह अपने पास के इन्द्र को भी तुच्छ ही समझता है ।

विक्रमादित्य : लेकिन मैंने जो सत्य सभा में रखा था, वह झूठ तो नहीं था। फिर तुमने ही क्यों नहीं....।

देवी : सुनो, मनुष्य भले ही मगरमच्छ के दाढ़ से मणि को निकाल ले, भयंकर तरंगोंवाले समुद्र को पार कर ले, महाक्रुद्ध विषधर को अपने सिर पर पुष्पमाल की तरह धारण कर ले, परन्तु मूर्ख हुये मनुष्य

के मन में जो बात जम जाती है, उसे हटा पाना एकदम मुश्किल है।

विक्रमादित्य : माता कुलदेवी, लेकिन मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ । तुमने अगर अग्रजश्री को पूर्व में ही सब कुछ समझा दिया होता, तो उनके नहीं मानने का कोई कारण नहीं था ।

देवी : सुनो! नासमझ, अज्ञानी, बुद्धिहीन को आसानी से समझाया जा सकता है; यहाँ तक कि समझदार को भी सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है, लेकिन जिसमें बुद्धि का ही ह्रास हो गया हो, उसको तो ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते ।

विक्रमादित्य : तब अब क्या होगा ?

देवी : अब कुछ भी नहीं हो सकता । महाराज अभी मोह से उत्पन्न अज्ञानता में डूबे हैं, उनके पतन की कहानी अभी और बनेगी । पतितपावनी गंगा जब शिव के मस्तक से हिमगिरी पर उतरी, तो वहाँ से पृथ्वी पर आयी और फिर पृथ्वी से समुद्र में जा गिरी । विवेक से शून्य पुरुषों की ऐसी ही गति होती है । और यह सब देखने के लिए मैं यहाँ अब नहीं रह सकती हूँ । मैं जाती हूँ ।

[पदचाप/संगीत-प्रवाह।]

विक्रमादित्य : जब माता कुलदेवी ही चली गई, तब मैं ही यहाँ रह कर क्या करूँगा । ठीक ही तो अग्रजश्री ने कहा था— निर्जन पर्वतों पर जंगली जानवरों के साथ जीवन जीना कहीं श्रेयष्कर है, इससे कि इन्द्र के भवन में बुद्धिभ्रष्ट लोगों के साथ रहना पड़े। माता कुलदेवी, मैं भी जा रहा हूँ । (पदचाप।)

[करुण संगीत-प्रभाव।]

[दृश्यांतर।]

[पायलों की आवाज करीब आकर समाप्त।]

पिंगला : मेरे प्रिय घुड़सालपति, आज तुम्हारे लिए मैंने एक बहुत बड़ी खुशी लायी है ।

घुड़सालपति : विक्रमादित्य को रास्ते से हटा कर मुझे तुमने जो खुशी दी है, उससे भी बड़ी ?

पिंगला : हाँ; यह देखो ।

अश्वपति : अरे, यह तो बस एक फल है ।

पिंगला : इसे तुम सिर्फ एक फल समझ रहे हो ! यह वह अमर फल है

जिसे खा कर तुम आजीवन युवक बने रहोगे । मृत्यु पर विजय पाओगे । लेकिन पहले बोलो, चिर युवक बन कर मुझे भूल तो नहीं जाओगे ?

अश्वपति : ऐसा भी हो सकता है क्या ! लेकिन यह अमर फल तुम्हें मिला कहाँ से ?

पिंगला : महाराज भर्तृहरि से । महाराज को नगर के एक गरीब ब्रह्मचारी ने दिया था, और ब्राह्मण को यह अमर फल मिला था कुलदेवी से। अब समझ गये । देवी ने ब्रह्मचारी की तपस्या से खुश होकर उसे यह अमर फल दिया था।

अश्वपति : और अब उसे तुम मेरे लिए ले आई हो ।

पिंगला : हाँ, महाराज ने तो तुरत ही इसे ग्रहण कर लेने को मुझसे कहा था। लेकिन मैंने पूजा के बाद ग्रहण करने का बहाना किया और इसे तुम्हारे लिए ले आई । अब तुम इसे जल्दी से ग्रहण कर लो । मैं रुक नहीं सकती, महाराज कभी भी मेरे शयनकक्ष में आ सकते हैं । चलती हूँ ।

[पायलों की खत्म होती आवाजें।]

[संगीत-प्रवाह।]

पुरुष स्वर : (प्रतिध्वनित होते स्वर में) घुड़सालपति, इस अमर फल को तुम खाकर क्या करोगे ! अच्छा तो होगा कि इसे तुम अपनी उस प्रेमिका वेश्या को खिला दो, जो अनन्त काल के लिए युवती बनी तुम्हें तृप्त करती रहेगी। यह अमर फल उसे ही खिला दो, घुड़सालपति। (झंकृत संगीत।)

अश्वपालपति : हाँ, यही अच्छा होगा, इससे बढ़िया कुछ हो ही नहीं सकता ।

[दृश्यांतर।]

रूपाजीवा : मुझे चाहने वाला अश्वपालकपति, मुझे यह अमर फल दे गया है। कह गया है– इसे खाते ही मैं चिर युवती हो जाऊँगी । यह यौवन कभी खत्म नहीं होगा । लेकिन मैं तो ठहरी वेश्या, एक रूपाजीवा, मैं इस जीवन को स्थायित्व देकर भला क्या करूँगी। यह अमर फल खाने का अर्थ है—अनन्त काल तक पापों के कुचक्र में बहते जाना (विकलता से) नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, (अन्तराल) हाँ, यह कितना अच्छा होगा कि इसे मैं महाराज को दे आऊँ । महाराज

अमर हो जायेंगे, तो राज्य की सारी प्रजाएँ भी अनन्त काल तक सुखी रहेंगी, और मुझे भी संतोष होगा कि जीवन में मैंने एक पुण्य का कार्य किया है। हाँ, चलूँ, यह अमर फल राजा को ही दे आऊँ।

[दृश्यांतर।]

दरबारी : महाराज की जय हो ! दरबार में नगर की एक रूपाजीवा प्रवेश पाना चाहती है ।

भर्तृहरि : आज्ञा है, ले आओ !

[पदचाप/पायलों की झंकृति।]

भर्तृहरि : क्या है गणिके ? यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ?

रूपाजीवा : हमारे राज्य की समस्त प्रजाओं के पालक महाराज की सेवा में मैं एक ऐसा अमर फल ले आई हूँ, जिसे खाकर कोई भी मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर ले सकता है । महाराज ! मेरी इच्छा है कि आप इसे ग्रहण करें, ताकि इस राज्य की प्रजा अनन्त काल के लिए सुखी-सम्पन्न हो सके, आप के सुशासन की छाया में रहती हुई।

भर्तृहरि : (प्रतिध्वनित स्वर) अरे, यह अमर फल तो मैंने रानी पिंगला को दिया था, यह इस रूपाजीवा को कैसे मिला ? (सामान्य स्वर में) गणिके, तुम्हारी इच्छा मुझे स्वीकार है, लेकिन यह बताओ कि तुम्हें यह अमर फल किससे, कहाँ और कैसे मिला ?

रूपाजीवा : महाराज ! मुझे क्षमा करें, यह अमर फल मुझे चाहनेवाले आपके घुड़सालपति ने दिया है ।

भर्तृहरि : (प्रतिध्वनित स्वर) तो क्या रानी पिंगला ने इसे घुड़सालपति को दे दिया था । क्या पिंगला उस पर.....(सामान्य स्वर में) गणिके, फलवाली थाली मेरे हाथों में दो ! (अन्तराल) ठीक है, अब तुम जाओ । (अन्तराल) द्वारपाल तुम भी जाओ !

[दृश्यांतर।]

भर्तृहरि : (अत्यन्त गंभीर स्वर में) कैसी विडम्बना है, मैं जिसकी चिंता निरंतर ही किया करता हूँ, वही मुझसे विरक्त रह कर किसी दूसरे पुरुष की इच्छा में रत है। वह दूसरा पुरुष भी अन्य स्त्री से आसक्त है और यह देखो, मुझे कोई अन्य स्त्री ही अपने प्राणों से ज्यादा चाहती है । (उसाँसे भरते हुए) ऐसे में अन्य पुरुष से आसक्त मेरी

पिंगला को धिक्कार है, और मेरे घुड़सालपति को भी धिक्कार है। जिसे वह चाहती है । इस गणिका को भी धिक्कार है, जो मुझ पर प्राण न्योछावर करती है, और मुझे भी धिक्कार है, जो काम के वशीभूत रहा है । साथ ही उस कामदेव को भी धिक्कार है जिसके कारण मनुष्य उचित–अनुचित के विवेक से शून्य हो जाता है (पुनः एक दीर्घ साँस लेते हुए) नीतिनिपुण की यह उक्ति है, लक्ष्मी साथ रहे या साथ छोड़ दे, मृत्यु आज हो या कल, गंभीर व्यक्ति किसी भी स्थिति में न्याय का मार्ग नहीं छोड़ता (विकलता का स्वर) लेकिन मैंने काम के वशीभूत होकर न्याय का मार्ग छोड़ दिया । इसीसे नगर की कुलदेवी साथ छोड़ गई, तो विक्रमादित्य जैसा भाई भी साथ छोड़ गया (लंबी साँस) हाँ, मनुष्य को कर्मानुसार ही सुख-दुख भोगना पड़ता है, और कर्मानुसार ही उसकी बुद्धि भी हो जाती है । तब भी बुद्धिमान को समझ-बूझ कर ही कर्म करना चाहिए । (प्रश्न के स्वर में) लेकिन अब मुझे क्या करना चाहिए? क्या करना चाहिए मुझे ? (उत्तर के स्वर में) हाँ, मुझे इसी क्षण इस राजभवन को त्याग देना चहिए। इन आभूषणों को उतार देने में ही जीवन की शांति निहित है । (आभूषणों को रखने की ध्वनियाँ/एक दीर्घ साँस लेकर) आज मैंने जाना कि इस संसार में एक तिल भर भी सुख दुर्लभ है । पहले तो माँ के गर्भ में दुख पाओ, फिर जवानी में स्त्री के वियोग में दुखी रहो, और फिर बुढ़ापे में स्त्री के अपमान को सहते रहो (उसाँस) मनुष्य की आयु पानी की लहरों-सी चंचल है, जवानी भी कुछ दिनों की चमक । मनुष्य की वासना भी वर्षाकालीन बिजली की तरह क्षणिक होती है; स्त्री के गले से मिलने का सुख भी स्थायी नहीं है – तब इस कष्ट रूपी संसार को पार करने के लिए एक परमात्मा में ही मन लगाना ठीक है, (संतोष का स्वर) हाँ, इस ज्ञान के बाद अब यहाँ एक पल भी ठहरना व्यर्थ है (आवाहन के स्वर में) हे माता पृथ्वी, हे पिता वायु, हे मित्र अग्नि, हे सुबंधु जल, हे भ्राता आकाश, हे आदि देव स्वयंभू, मैं हाथों को जोड़ कर आप सबों को प्रणाम करता हूँ । मैं अपने समस्त मोह-महिमा को छोड़कर आप में लीन होने आ रहा हूँ ।

[एक करुण संगीत की झंकार के बीच
अन्तिम वाक्य उभरता, फिर समाप्त होता है।]

बिहार का बब्बर

[बूटों की आवाजें, चहलकदमी।]

अमर सिंह : आज भाई साहब के चेहरे पर परेशानी दिख रही है।

कुँवर सिंह : कारण है, अमर सिंह, इसका कारण है। अंग्रेजी शासकों को पटना के सक्रिय स्वराजियों के बारे में पता लग गया है।

अमर सिंह : सुना है, इन स्वराजियों में देशी पुलिस भी शामिल हैं।

कुँवर सिंह : हाँ! जिला तिरहुत के पुलिस जमादार वारिस अली को, स्वराजियों के साथी होने के जुर्म में ही फाँसी दे दी गई है। अली करीम तो भाग निकला लेकिन पटना के ही क्रांतिकारी संगठन के तीनों प्रभावशाली मौलवियों को, बातचीत करने के बहाने बुला कर, गिरफ्तार कर लिया गया है।

अमर सिंह : क्या लोगों में इस बात के लिए आक्रोश नहीं है ?

कुँवर सिंह : क्रांति भड़क गई है और क्रांति के मुख्य नेता पीर अली को फाँसी पर चढ़ा दिया गया है। पीर अली की फाँसी को लेकर दानापुर के देशी पलटनों ने तो स्वाधीनता का ही ऐलान कर दिया है।

अमर सिंह : यह तो अच्छी खबर है।

कुँवर सिंह : हाँ, और यह भी खबर है कि वे विद्रोही सैनिक, मुझ से मिलने के लिए जगदीशपुर की ओर चल पड़े हैं।

[घोड़े के टापों की आवाजें : फेड इन।]

कुँवर सिंह : लो, वे आ ही गये। चलो, मैं स्वयं उनका अभिनन्दन करूँगा।

[दरवाजा खुलने की ध्वनि।]

अनेक सैनिक : राजा कुँवर जी की जय हो।

एक सैनिक : राजा साहब, हमें आप का नेतृत्व चाहिए। कि हम इन फिरंगियों से अपनी मातृभूमि को मुक्ति दिला सकें।

कुँवर सिंह : बहादुर क्रांतिकारियों, मैं अपने हाथ में तलवार लिए आप सबों का इन्तजार कर ही रहा था, और अब एक पल के लिए भी यहाँ इन्तजार करना व्यर्थ है। मेरी सेना तैयार है। सेना की मजबूती के लिए सबसे पहले हमें अंग्रेजों के खजानों पर अधिकार करना होगा। चलें। (टापों की ध्वनि समाप्त फेड इन-फेड आउट।)

[दृश्यांतर।]

[जोरों की हर्ष ध्वनि।]

कुँवर सिंह : (हर्ष से) हमने अंग्रेजी खजानों पर अधिकार कर लिया है। अंग्रेजी दफ्तरों को ध्वस्त कर दिया गया है और जेलों से कैदी मुक्त हो गये हैं।

एक सैनिक : बस अब किले पर अधिकार करना है जिसमें देशी सैनिकों के साथ अंग्रेजी पुलिस छुप के बैठे हैं।

दूसरा सैनिक : लेकिन मुझे नहीं लगता कि वे आत्मसमर्पण करेंगे।

कुँवर सिंह : करेंगे, अवश्य करेंगे। तुमलोग देख रहे हो न, अस्सी साल के मेरे इस वज्र शरीर को। मैं इसमें समन्दर लहराता महसूस कर रहा हूँ और जब समन्दर अंगड़ाई लेता है न, तब सौ-सौ सल्तनतें भी इसमें डूब जाती हैं।

दूसरा सैनिक : अपने कथन के लिए मैं लज्जित हूँ, राजा साहब।

[टापों की दूरागत ध्वनि।]

कुँवर सिंह : सुनो (टापों की ध्वनि) लगता है किले में बंदी सैनिकों की सहायता के लिए ही अंग्रेजी सेना आ रही है। चलो, हमलोग सामने वाले आम के बगीचे में, वृक्षों पर छुप जाएँ। सेना उसी बगीचे के नीचे से गुजरेगी और जब वह गुजरेगी, तब हम उस पर गोलियों की बारिश कर देंगे। रात हो रही है, वे हमें देख भी नहीं सकेंगे।

[बूटों की तेज आवाज और वृक्षों के सरसराने की ध्वनि।]

[नजदीक होते टापों की ध्वनि के साथ गोलियाँ की दनदनाहट। चीखने और कराह की आवाजें : फेड आउट।]

एक सैनिक : (हर्ष से) सेना का संचालक दानापुर का कप्तान डनवर भी मारा गया। कहिए, तो इन भागते हुए पच्चीस-तीस सैनिकों को भी.

कुँवर सिंह : नहीं सैनिकों, नहीं। प्राणों की रक्षा के लिए जो सैनिक युद्धभूमि छोड़ दे, उसकी हत्या के लिए उद्धत होना हिन्दु राजाओं की

रणनीति के विरुद्ध है। भागने दो। दुश्मन अपनी मर्यादा भूल जाए, तो भूल जाए, हम अपनी मर्यादा घोर विपत्ति में भी नहीं भूल सकते।

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : (तेज स्वर में) मैं राजा कुँवर सिंह किले के सभी बंदी सैनिकों से कह रहा हूँ, अगर तुमलोगों ने आत्मसमर्पण किया, तो तुम लोगों की जान बख्श दी जायेगी।

[टापों की ध्वनि।]

कुँवर सिंह : क्या खबर है, अमर सिंह?

अमर सिंह : भाई साहब, डनवर सहित लगभग सारे सैनिकों को मार दिये जाने की खबर, आग की तरह, दानापुर पहुँच गई है, और मेजर आयर एक बड़ी सेना लिए, तोपों के साथ, इस किले की सेना की सहायता के लिए चल पड़े हैं।

[दृश्यांतर।]

[गोलियों का ध्वनि-प्रभाव।]

हेस्टिंग्स : मेजर आयर, लगता है कुँवर सिंह की सेना के समक्ष हमारी सेना टिक नहीं पायेगी।

मे॰ आयर : कायर हेस्टिंग्स, दुश्मनों पर तोपों की बारिश करो!

[तोपों की आवाजें।]

कुँवर सिंह : अमर सिंह, जीता हुआ युद्ध हाथ से बाहर जाता लगता है, नयी सैन्य शक्ति के लिए हमें जगदीशपुर लौट जाना चाहिए। सैनिको, राजधानी लौटो !

[टापों की ध्वनि : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[दरवाजा खुलने की आवाज।]

कुँवर सिंह : क्या खबर लाये हो, अमर सिंह ?

अमर सिंह : भाई साहब, हमारा पीछा करते हुए अंग्रेज सैनिकों ने महल को चारों ओर से घेर लिया है।

कुँवर सिंह : मैं चाहता भी यही था और वही हुआ, लेकिन हम अंग्रेज सैनिकों की तरह, प्राणों की रक्षा के लिए, महल या किले में छिपे नहीं रह

सकते।

अमर सिंह : लेकिन मेरी राय मानें, तो आप महल की सभी स्त्रियों को लेकर, बारह सौ सैनिकों के साथ, राजधानी से बाहर निकल जाएँ। मातृ भूमि और मान की रक्षा के लिए ऐसा करना समय की मांग है ।

कुँवर सिंह : लेकिन यह युद्ध?

अमर सिंह : आश्वस्त रहें, भाई साहब! मैं अपने सैनिकों की इस छोटी टुकड़ी के बल पर ही एक पक्ष तक निरन्तर अंग्रेजी सेनाओं के विरुद्ध युद्ध करता रहूँगा।

कुँवर सिंह : तो ठीक है, मैं अन्यत्र पहुँच कर अंग्रेजों पर आक्रमण की तैयारी करूँगा। पर जाने से पूर्व, युद्ध के उत्सव का आरंभ देख कर ही जाऊँगा। सैनिकों को आदेश दिया जाए कि वे अपनी बंदूकों की गोलियों और दुश्मनों की छातियों को एक होने दे। (अन्तराल)

[गोलियों की दनदनाहट : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

अफसर : मिलमैन, मुझे खबर मिली है कि अपनी सेना सहित राजा कुँवर सिंह ने, आजमगढ़ से पच्चीस मील दूर, अतरौलिया स्थान में डेरा डाला है। उसने आजमगढ़ के अन्य क्रांतिकारियों को भी अपने पक्ष में कर लिया है।

मिलमैन : सर, मिलमैन को इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता, मैं कुछ पैदल, कुछ सवार और दो तोपें लेकर २२ मार्च को कुँवर सिंह की सेना पर धावा बोल दूँगा।

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : सैनिकों, मुझे खबर मिली है कि अंग्रेज सेनापति मिलमैन हम पर आक्रमण करेगा। अच्छा है, हम उसके सर्वनाश का दृश्य इसी अतरोली में देखेंगे।

[टापों की ध्वनियाँ : फेड इन।]

अंग्रेजी सेना नजदीक आ गई है। सामने आते ही हमें उस पर आक्रमण कर देना है। फिर पीछे लौटते हुए जंगलों में छिप जाना है। जब मिलमैन को विश्वास हो जाए कि दुश्मन भाग खड़े हुए हैं और वे मौज-मस्ती मनाने लगें, तब हमें उन पर टूट पड़ना है।

[टापों की ध्वनि नजदीक होते ही गोलियों और तोपों की गड़गड़ाहट प्रारंभ।]

मिलमैन : रोको, इन बंदूकों और तोपों को। दुश्मन भाग चुके। (ठहाका) आओ, इस जीत की खुशी में नाचो, गाओ, खाओ-पिओ!

[हर्ष के स्वर के बीच गलगुदुर।]

[अन्तराल : गोलियों की दनदनाहट शुरु।]

कुँवर सिंह : (हर्षातिरेक) केतु देखो, गोलियों से छलनी होकर दुश्मन कैसे एक दूसरे पर गिर रहे हैं, जैसे जंगल की सफाई हो रही हो।(अट्ठहास) और उस सेनापति मिलमैन को तो देखो, अपने सैनिकों के साथ तोपों को खींचते किस तरह भागे जा रहा है, जैसे किसी गीदड़ ने सिंह को देख लिया हो। (अट्ठहास।)

[दृश्यांतर।]

लार्ड मार्कर : मैं लार्ड केनिंग की परेशानी का कारण जान सकता हूँ।

ला. केनिंग : लार्ड मार्कर, हद हो गई। हमारी परेशानी को जानना चाहते हो, सब कुछ जानते हुए भी । मिलमैन की पराजय के बाद उसकी सहायता के लिए कर्नल डेम्स के नेतृत्व में जिस अंग्रेजी सेना को भेजा गया था, वह भी पराजित हुई, और कर्नल डेम्स ने आजमगढ़ के किले में घुस कर अपनी जान बचाई। (आवेश) लार्ड मार्कर।

मार्कर : आदेश !

ला. केनिंग : बाबू कुंवर सिंह अभी बनारस के ठीक उत्तर में है।

मार्कर : सुना है, उसने लखनऊ से भागे हुए सभी क्रांतिकारियों को अपनी सेना में शामिल कर लिया है।

लार्ड केनिंग : ठीक सुना है। सेनापति के रूप में तुम सेना और तोपों के साथ राजा कुँवर सिंह पर वैसा ही हमला करो; जैसा बाबू कुँवर सिंह करता है ! जाओ।

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : केतु, आज ६ अप्रैल १८५२ है; आज मैं इक्यासी वर्ष का कुँवर सिंह हो गया हूँ, और आज के ही दिन मेरा मुकाबला सेनापति लार्ड मार्कर से होगा। आज मार्कर मेरे यौवन का वह उन्माद देखेगा, जिस उन्माद के समक्ष सागर की उठती हुई भीषण ज्वार भी ठहर

जाती है। धरती के सीने को भयभीत करनेवाला भूकंप भी भयभीत हो उठता है। आज मेरे पुरुषार्थ के जोर से दुश्मनों का भू-मंडल डोलेगा।

[गोलियों और तोपों की गड़गड़ाहट।]

[चीख-रुदन और भयंकर शोर।]

ला. केनिंग : क्या बात है सैनिक, तुम घबड़ाये हुए क्यों हो?

सैनिक : दरअसल बात यह है कि उस बूढ़े राजा ने हमारे सैनिकों का सफाया उसी तरह कर दिया है; जैसे, बब्बर शेर जंगल के बड़े-बड़े जानवर और जीव-जंतुओं का कर देता है।

ला. केनिंग : यू सटअप, सेनापति लार्ड मार्ककर कहाँ है ?

सैनिक : उन्होंने अपने प्राणों की रक्षा आजमगढ़ के किले में भाग कर की, पर दुर्भाग्य से बाबू कुँवर सिंह के सैनिकों ने उन्हें उसी किले में बंदी बना लिया है।

ला. केनिंग : माई गॉड! उस बूढ़े राजा ने सेनापति मार्ककर को भी बंदी बना लिया। व्हाट ए सेम। हम आज ही एक दूसरी सेना मार्ककर की सहायता के लिए सेनापति लेगर्ड के नेतृत्व में भेजेंगे। (भय) हे! हिन्दुस्तान का एक बूढ़ा आदमी हिन्दुस्तान भर की ताकत ले कर इस तरह खड़ा रह सकता है। हाउ टेरीबुल।

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : केतु, आज मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है। देखा कि अंग्रेजी सेना राजधानी जगदीशपुर को बूटों से कुचल रही है और मेरी प्रजा (अन्तराल) मुझे अभी ही अपनी राजधानी लौटना पड़ेगा, अपनी प्रजा की रक्षा के लिए।

केतु : लेकिन खबर मिली है कि सेनापति लेगर्ड हम पर चढ़ाई के लिए चल चुके हैं।

कुँवर सिंह : तो, मैंने भी उसके लिए रणनीति तैयार कर ली है। मेरी सेना का एक दल, सेनापति लेगर्ड के आजमगढ़ पहुँचने से पूर्व ही, उसे तानू नदी के पुल पर रोक कर उसका मुकाबला करेगा। बाकी सेना को लेकर मैं गाजीपुर चला जाऊँगा। केतु, लेगर्ड से मुकाबला के लिए मैं जिस दल को भेज रहा हूँ, वह महीने भर अंग्रेजी सेना से युद्ध कर सकता है, और हमारे दल को जैसे ही इसका आभास हो

जाएगा कि हमलोग काफी दूर निकल गए होंगे, वह लड़ाई छोड़कर हमसे जा मिलेगा। बेचारा लेगर्ड (हँसी।)

[दृश्यांतर।]

[गोलियों और तोपों की गड़गड़ाहट।]

एक सैनिक : सर, बाबू कुँवर सिंह ने हमलोगों को उल्लू बनाया है। वह तो मुख्य सेना के साथ, अपनी राजधानी पहुँचने के लिए, गाजीपुर की ओर निकल गये हैं।

लेगर्ड : व्हाट, राजा ने हमें उल्लू बनाया? हम भी उसे मुर्दा बना के छोड़ेंगे। सेना, गाजीपुर की ओर बढ़ो।

[घोड़े की टापों की तेज ध्वनि : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[टापों की तीव्रतर ध्वनि।]

कुँवर सिंह : लो, लेगर्ड अपनी सेना के साथ यहाँ भी आ पहुँचा। (उसाँस) अब इन सबकी बलि चढ़ा कर ही गंगा की ओर बढ़ूँगा।

लेगर्ड : सी, वह रहा राजा कुँवर सिंह और उनकी सेना। फायर (गोलियों की आवाजें।)

[घोड़े की हिनहिनाहटें; चीख पुकार।]

कुँवर सिंह : (अट्टहास) घंटे भर की मार में ही रूई की तरह धुन गये। हः, हः, हः। जब गीदड़ों की मौत आती है, तो वे शहर की ओर भागते हैं। (ठहाके की आवृत्ति।)

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : केतु, लगता है हम फिर घिर गए हैं। सेनापति डगलस ने नघई गाँव को पूरी तरह से घेर लिया है। हमें इस विपत्ति का कुशल रणनीति के साथ मुकाबला करना होगा।

केतु : आखिर वह रणनीति क्या होगी?

कुँवर सिंह : हमारी सेना तीन टुकड़ियों में बँट जायेगी। एक टुकड़ी डगलस से युद्ध करती पीछे की ओर हटेगी, और जैसे ही युद्ध रत अंग्रेजी सेना थकेगी, हमारी अन्य दो सैनिक टुकड़ियाँ भी दोनों ओर से उस पर टूट पड़ेंगी।

केतु : तब तो डगलस की सेना की कब्रें भी यहीं पर बनेंगी। (दोनों की जोरदार हँसी।)

[दृश्यांतर।]

[टापों की ध्वनियाँ।]

कुँवर सिंह : केतु, हमलोग घाघरा नदी पार कर गंगा के करीब आ पहुँचे हैं। इस बीच सेनापति डगलस ने दो बार हम पर आक्रमण किया, और दोनों ही बार पीठ दिखा गया। क्या पता, गंगा पार करते-करते फिर एक बार कोई अंग्रेज कप्तान युद्ध करने आ पहुँचे।

केतु : आपकी शंका निर्मूल नहीं है।

कुँवर सिंह : ऐसे हाल में, शहर में हमें यह अफवाह फैला देनी चाहिए कि कुँवर सिंह की सेना, बलिया के निकट, हाथियों पर सवार होकर गंगा पार करेगी। जाहिर है, यह खबर सुनते ही अंग्रेजी सेना बलिया की गंगा पर तैनात होगी, और रात्रि के समय हमलोग शिवपुर घाट से किश्तियों पर सवार हो कर, गंगा के पार उतर जायेंगे।

[दृश्यांतर।]

सैनिक : माई गॉड, कुँवर सिंह ने हमें भारी धोखा दिया है। हम यहाँ उसका इन्तजार कर रहे हैं और वहाँ वह....! पलटन, हरी अप। हमें शिवहर तुरत पहुँचना है।

[दृश्यांतर।]

[झींगुर की झनझनाहटें।]

कुँवर सिंह : सारे सैनिक किश्तियों से गंगा पार हो गए, अब हमें भी शीघ्र ही पार उतर जाना चाहिए।

[चप्पू चलने से लहरों की आवाजों के साथ निरंतर टापों की ध्वनियाँ ऊँची-नीची होती रहती हैं।]

कुँवर सिंह : लगता है, अंग्रेजी सेना को हमारी योजना का पता लग गया है, और वह यहाँ तक आ पहुँची है लेकिन अब तो हमारी किश्ती मध्य गंगा में है।

[गोलियाँ चलने की आवाजें।]

ओह! (कराहते हुए) किसी अंग्रेज सैनिक ने गोली चला दी, जो मेरे

हाथ में ही आ लगी है। कम्बख्त, गोली भी लगी, तो दायें हाथ में। (लंबी साँस) कोई बात नहीं, अभी बायां हाथ बाकी है। मैं इसी हाथ से अपने दायें हाथ को काट कर इसे गंगा को समर्पित करूँगा। माँ, मैंने इसी हाथ से सैकड़ों शत्रुओं के सर उतारे हैं, आज वही हाथ तुम्हें समर्पित करता हूँ। (प्रहार और जल में कुछ गिरने की ध्वनि) किश्ती तेज करो। (चप्पू और लहरों की तेज आवाजें।)

[दृश्यांतर।]

ब्रिटिश अफसर : लीग्रैंड!

लीग्रैंड : यस सर।

अफसर : आठ महीने जगदीशपुर से बाहर रहने के बाद, राजा कुँवर सिंह ने अपने भाई अमर सिंह के सैनिक सहयोग से पुनः अपनी राजधानी पर कब्जा कर लिया है। हाउ मच डिसग्रेसफुल।

लीग्रैंड : आप के आदेश की प्रतीक्षा है, सर!

अंग्रेज अफसर : तुम आज ही एक बड़ी सेना लेकर जगदीशपुर पर हमला करो। राजा कुँवर सिंह के साथ यह हमला आखिरी लड़ाई हो।

लीग्रैंड : ऐसा ही होगा ।

[दृश्यांतर।]

कुँवर सिंह : अमर सिंह, सेना को तैयार करो! ब्रिटिश सेना के साथ हमारी यह आखिरी लड़ाई होगी।

अमर सिंह : लेकिन हमारे पास तो सिर्फ एक हजार सैनिक बच रहे हैं, और लीग्रैंड की सेना न केवल विशाल है, बल्कि आधुनिक सैन्य साधनों से सुसज्जित भी है ।

कुँवर सिंह : अमर सिंह, तुम यह भूलते हो कि तुमलोगों के पास मैं हूँ, राजा कुँवर सिंह। हमारी ही मिट्टी पर विदेशी हमें भयभीत करें, यह हमारे पूर्वजों के सम्मान के विरुद्ध बात होगी। अमर सिंह, विश्वास रखो, अंग्रेज सैनिक पशुओं की तरह कसाईखाने में यहाँ कटने के लिए आ रहे हैं। उनके वध के लिए मेरा यह एक हाथ ही काफी है।

[द्वार खुलने की आवाज।]

एक सैनिक : राजा साहब, अंग्रेजी सेना ने राजधानी में प्रवेश कर महल को घेर लिया है।

कुँवर सिंह : तो, हमारे सैनिक भी बंदूक और तलवार लेकर नगर को ही युद्धभूमि बना डाले। आज मैं अपने सैनिकों को तांडव नृत्य करते देखना चाहता हूँ और धरती को अड़हुल का फूल। अमर सिंह, मेरे घोड़े को लाओ!

[गोलियाँ, तोप, तलवारों की ध्वनियों के साथ-साथ चीख-चित्कारों, रुदन की निरंतरता। चीख के स्वर के बीच राजा कुँवर सिंह की जय के नारों की पुनरावृत्ति।]

कुँवर सिंह : अमर सिंह, इस जीत की खुशी में, राजधानी के ऊपर किस तरह हरा झण्डा लहरा दिया गया है। इसी झण्डे पर चढ़कर हमारी पूर्ण स्वाधीनता एक दिन आयेगी। आ के रहेगी। (पुनः नारों की देर तक पुनरावृत्ति।)

निदेशक : और उस बूढ़े राजपूत राजा की मृत्यु २६ अप्रैल सन् १८५८ ई. को हुई, जिसने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपनी बहादुरी और क्षत्रित्व वह स्वर्णिम अध्याय गढ़ा, जिससे आज भी भारतीय स्वाधीनता का इतिहास आभामय हो रहा है ।

गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी

[गाड़ी के स्टार्ट होने की तेज आवाज, जो फिर धीमी आवाज में जारी रहती है।]

खलासी : जाने वाले, ऊपर उठिए। (गाड़ी की बॉडी पर हाथ से दो बार जोर का प्रहार करते हुए) ऊपर उठिए, सभी जाने वाले!

[गाड़ी के घुर्र-घुर्र की आवाज तेज होकर फिर मद्धिम। खलासी की आवाज के साथ सवारियों के दौड़तें आने की पदचापें। गेट पर होने वाली धक्कमधुक्की की चिल्लपों।]

खलासी : (गुस्से में) हटिये, हटिये, देख रहे हैं कि गाड़ी खाली है, फिर भी धक्कम-धुक्की। सब को सीटें मिल जायेंगी। पहले लेडीज को चढ़ने दीजिए। (और भी गुस्से में) हटिए, हटिए। (आवाज को मुलायम कर।) उठिए बहन जी।

[एक क्षण की खामोशी के बाद फिर वही चिल्लपों।]

कई स्वर : अरे, यह मेरी सीट है, यह मेरी सीट है।

सवारी १ : मैं आपको ही कह रहा हूँ न, वह सीट मेरी है।

सवारी २ : (क्रोध मिश्रित घृणा से) हाँ, यह आपकी ही सीट है, जैसे सीट पर आपके चेहरे का फोटो छपा हुआ है।

सवारी १ : (स्वर में और भी गुस्सा और झुंझलाहट) हाँ, हाँ, फोटो ही छपा है, सीट पर यह देखते नहीं मेरा अखबार। वहीं मेरा फोटो है । समझ गये न। मैंने इसे खिड़की से फेंक दिया था।

सवारी २ : (पूर्व के स्वर में) अरे जाइए, जाइए। अखबार फेंक दिया, तो समझिये कि सीट भी फेंका गई।

खलासी : (तेज स्वर में) गाड़ी का स्टार्ट बन्द कीजिए।

[गाड़ी की आवाज मद्धिम होती है और गाड़ी में इसी के साथ चुप्पी फैल जाती है।]

खलासी : अरे, क्या बात है, आप दोनों आपस में इस तरह झों-झों क्यों कर रहे हैं?

सवारी १ : अब तुम्हीं समझाओ, इस महाशय को, जब मैंने पहले ही सीट पर अपना अखबार रख दिया था, तो सीट मेरी हुई कि नहीं ?

सवारी २ : (खिसियाये स्वर में) मुझे समझाने की जगह उन्हें ही समझाओ, अभी तो ये गेट पर ही खड़े हैं और इनका अखबार यहाँ सीट पर कैसे आ गया ?

सवारी १ : खिड़की से रख दिया था, और कैसे।

सवारी २ : वाह, खिड़की से रख दिया था। अरे, आपको मालूम होना चाहिए कि मैंने खिड़की से पहले ही इस सीट को छू दिया था। अब कहिये सीट मेरी हुई कि नहीं ?

[कई सवारियों की हँसी एक साथ।]

खलासी : देखिये, आप दोनों इस तरह टकराइए मत। सीट ही न चाहिए, मिल जायेगी। पहले आप यह तो बताइए, आपको जाना कहाँ है?

सवारी १ : मनौन।

खलासी : और आपको भाई साहब ?

सवारी २ : पुलसिया।

खलासी : और इसी के लिए सीट की मारामारी। चलिए, चलिए। दोनों गाड़ी से बाहर निकलिए।

सवारी १-२ : अरे, बाहर कैसे निकलेंगे। हमने भी पैसे दिये हैं, कोई झिटकी नहीं। गाड़ी से नहीं उतरेंगे, समझे।

खलासी : वाह, अभी आप दोनों आपस में लड़ रहे थे, अब एक होकर मुझसे ही लड़ने लगे।

[कुछ सवारियों की हँसी।]

कैसे नहीं उतरियेगा। गाड़ी किसी की खरीदी हुई है क्या ?

सवारी १-२ : अय, जुबान ठीक से निकालो, नहीं तो गाड़ी से नीचे फेंक दूँगा।

सवारी १ : रामदेवा, बाहर में छैं की रे? जरा एक साटो खींची कें दैं तें, बड़ी गाड़ी सें उतारे वाला ऐलो छै।

सवारी ३ : अरे भाई, इस तरह उलझने से क्या फायदा। जाना ही तो है। अब खलासी कहता है तो....

सवारी २ : ओऽऽऽ, आपको सीट मिल गई है, तो बैठे-बैठे कानून बघार रहे हैं, चुपचाप बैठिये!

कुछ सवारी : देखो खलासी, मुझे विक्रमशिला ट्रेन पकड़नी है, अपना काम बढ़ाओ और गाड़ी खुलवाओ!

खलासी : आपको कहाँ जाना है?

सवारी ३ : बैहरा।

खलासी : और आपको ?

सवारी ४ : अमरीशपुर।

खलासी : और आपको भाई साहब ?

सवारी ५ : भागलपुर।

खलासी : तो आप इस सीट पर बैठ जाइये। (दाँत पीसते हुए) भागलपुर वाले खड़े रहेंगे और पुलसिया, मनौन जाने वाले सीट लेने के लिए मारमारी करेंगे, हुँह।

सवारी ६ : (रौब से) अय सुनो, मुझे भी भागलपुर जाना है, सीट दो।

खलासी : एक मिनिट रुकिये (अन्तराल) आपको कहाँ जाना है?

सवारी ७ : पंजा।

खलासी : चलिए, उठिए, उठिए। भागलपुर वाले खड़े रहेंगे और जरा पंजा वाले को देखिये, कैसे सीट जकड़ियाए हुए हैं। चलिए-उठिए।

सवारी ७ : नहीं उठेंगे, क्या कर लोगे।

खलासी : नहीं उठियेगा? चलिए उठिए।

सवारी ७ : (गुस्से में) अरे, तुम मेरी बाँह धर कर उठायेगा। साले, कमीने, तुम्हारी ये हिम्मत। अभी तुम्हें बताता हूँ।

[चटाक-चटाक की आवाजें। आवाजों के साथ ही एक साथ कई सवारियों का हो-हो कर चिल्लाना। गेट का जोर से खुलना।]

कई सवारी : अरे, इस लाइन की गाड़ियों में तो यह सब होता ही रहता है। ड्राइवर साब, गाड़ी बढ़ाइए, नहीं तो ट्रेन छूट जायेगी।

ड्राइवर : (गुस्से के स्वर में) छोड़ते हैं कि नहीं खलासी को। (एकदम शांति) पता नहीं कहाँ से चले आते हैं ये पैसेंजर। (अन्तराल) और, तुमको भी कह चुका हूँ कि पैसेंजर को हाथ पकड़ कर अटैची की तरह मत उठाया करो, लतखोर। उठाना ही हो, तो उस पैसेंजर की काया-काठी भी देख लिया करो।

[सम्मिलित हँसी।]

सवारी ६ : अच्छा हुआ ड्राइवर साहब कि आपने मामला संभाल लिया, नहीं तो आज आपके खलासी का कचूमर निकल जाता; लेकिन अब तो गाड़ी बढ़ाइए। देखिये ट्रेन का समय...

खलासी : अरे, ट्रेन का समय हो गया तो क्या, हम गाड़ी खाली ही ले जायेंगे?

सवारी ५ : देखिए इस खलासी को, अभी-अभी इसकी हालत कैसी थी और अभी-अभी इसकी आवाज देखिए।

खलासी : और नहीं तो क्या। आपलोगों के कारण मालिक को घाटा दे दूँ। भीड़ मत बढ़ाइए! मुझे नीचे जाने दीजिए! हटिए, हटिए, हटिए।

सवारी १ : अरे माथे पर से उछल कर जायेगा क्या?

[सामूहिक हँसी।]

खलासी : (गाड़ी की बॉडी पर हाथ मारते) चलिए, जाने वाले ऊपर उठिए।

[गाड़ी के घुर्र-घुर्र की आवाजें तेज होती हैं।]

खलासी : होऽऽ होह; रुक कर। पैसेंजर आ रहा है।

कई सवारी : अब क्या माथे पर बिठाओगे, यार !

खलासी : सब हो जाएगा, आपको ही सिर्फ गाड़ी नहीं पकड़नी है औरों को भी गाड़ी पकड़नी है।

[गाड़ी की आवाज और तेज होती है।]

खलासी : होऽऽ होह; स्टार्ट बन्द कीजिए!

[स्टार्ट बन्द हो जाता है, और सवारियों की प्रतिक्रियाएँ तेज हो जाती हैं।]

कई स्वर : चलो, कोई दूसरी गाड़ी आयेगी, तो उसी से निकल जायेंगे।

[यात्रियों का गलगुदुर प्रारंभ। खलासी की कभी नजदीक और दुरागत आवाजें गूंजती हैं, जाने वाले ऊपर उठिये। क्षण की शांति के बाद दूसरी गाड़ी की दुरागत आवाज। गाड़ी की बॉडी पर जोर से हाथ मारने की ध्वनि।]

खलासी : चलिए, गाड़ी बढ़ाइए। जाने वाले उठिए।

[सवारियों की धक्कम धुक्की के बीच गलगुदुर, और "मेरी सीट छोड़िए, मेरी सीट छोड़िए की आवाजें। अन्य गाड़ी के नजदीक आ कर रुकने की आवाज।]

सवारी ३ : देखिए ड्राइवर साहब, अगर तुरंत खोलना है, तो कहिए, नहीं तो उस गाड़ी से निकल जायेंगे।

कई स्वर : हाँ ड्राइवर साहब, गाड़ी पकड़नी है।

खलासी : चलिए, गाड़ी बढ़ाइए। (गाड़ी आगे बढ़ने की आवाज कि तभी फिर खलासी की आवाज) होऽ होह, पैसेंजर आ रहा है।

सवारी ४ : (तीखी आवाज) अरे पैसेंजर तो दिन भर आते रहेंगे, फिर क्या गाड़ी दिन भर रुकी रहेगी ?

[पीछे की गाड़ी के स्टार्ट होने और दूर जाने की ध्वनि।]

सवारी ५ : पीछे वाली भी गाड़ी खुल गई; अब भी तो गाड़ी बढ़ाइए ड्राइवर साहब।

[गाड़ी के घुर्र-घुर्र की तेज आवाजें।]

खलासी : होऽऽ होह।

कई स्वर : ड्राइवर साहब, आप गाड़ी बढ़ाते हैं कि नहीं !

ड्राइवर : बढ़ायेंगे कैसे। खलासी कहेगा तब न।

कई स्वर : (तेज स्वर में) खलासी क्या कहेगा।

सवारी ७ : रामदेवा, खलासी के गल्ला में गमछा डाली कें गाड़ी के भीतर खींची लैं तें।

कई स्वर : ठीक कहते हैं, ठीक कहते हैं।

खलासी : (गाड़ी की बॉडी पर जोर की एक थाप मारते हुए) चलिए, गाड़ी बढ़ाइए।

[गाड़ी के चल पड़ने की आवाज आखरी तक प्रसंगानुसार तेज और मद्धिम आवाज में जारी रहती है।]

खलासी : कहाँ जाना है ?

सवारी ७ : उल्टा पुल।

खलासी : छह टाका निकालिए। (अन्तराल) आपको ?

सवारी ८ : अनजानी।

खलासी : आठ टाका दीजिए। (रुक कर) और आपको ?

सवारी ६ : (गुस्साते हुए) कितनी बार पूछेगा। वैसे भी मुझे नहीं पहचानता कि मैं रोज कहाँ उतरता हूँ।

खलासी : ठीक है, ठीक है, दस टाका दीजिए।

सवारी ६ : (वक्रता से) कैसे देंगे दस टाका। अनजानी का आठ टाका भाड़ा, और दो कदम आगे बढ़ने का भाड़ा दस टाका हो गया ?

खलासी : (उसी वक्रता से,) होगा कैसे नहीं, अजी सुनिये, गाड़ी एक बार रुक कर जैसे फिर खुली कि समझिए दो रुपये का भाड़ा बढ़ा ।

सवारी ६ : कैसे बढ़ा ?

खलासी : ई तो दिल्ली सरकार से पूछिये कि तेल पर दाम कैसे बढ़ा?

सवारी ६ : यह तो सरासर तुमलोगों की बेईमानी है। सरकार तेल पर रुपये, दो रुपये क्या बढ़ाती है, तुमलोग एक स्टेज का भाड़ा एक रुपये बढ़ा लेते हो।

खलासी : नया बढ़ाया है क्या। जाना है तो भाड़ा निकालिए, वरना गाड़ी से उतरिए। (आवाज देता है) होऽऽ होह,।

कई सवारी : अरे साहब, आप व्यर्थ विवाद कर रहे है। सभी दे रहे हैं तो आपके विवाद से क्या होगा। गाड़ी को खा-म-खा लेट करवा रहे हैं।

[गाड़ी रुकने की आवाज।]

खलासी : चलिए, बढ़ाइये।

[गाड़ी बढ़ने की आवाज।]

सवारी ४ : अय साहब, ठीक से खड़े रहिए, देह पर लदे जा रहे हैं।

सवारी ५ : क्या लदे जा रहे हैं, देख नहीं रहे कि और आदमी किस तरह मुझ पर लदे हुए हैं।

सवारी ४ : तो, उन्हें आप उधर क्यों नहीं धकेल देते।

सवारी ५ : कैसे धकेल दें, एक तो आप सीट पर बैठे हैं, उस पर...

सवारी ४ : तो, क्या आपके लिए सीट छोड़ दूँ?

सवारी ५ : अरे छोड़ने के लिए कौन कहता है, लेकिन शांति से बैठे तो रहिए।

सवारी ४ : (तमक कर) और कहते हैं शांति से बैठिए। कद्दू की तरह कंधे पर लटके हुए हैं और कहते हैं, (जोर से) खलासी भीड़ हटाओ!

खलासी : (हल्की आवाज में) भीड़ कैसे हटेगी महाराज; भीड़ तो अब एक अरब की हो गई है। ई भीड़ अब ऐसे ही हटेगी। भीड़ बढ़ाते हैं आपलोग और हटाऊँ मैं। ई तो सरकार के बूते की भी बात नहीं।

[सामूहिक हँसी, जो अचानक पीछे से उठने वाले शोरगुल में खो जाती है।]

खलासी : अरे क्या हुआ, ओ भाय जी, क्या हुआ?

सवारी ३ : (गुस्से में) अरे होगा क्या! कैसे-कैसे आदमी को बिठा लेते हो। चलती गाड़ी में पिच से थूक दिया, सारा थूक मेरे मुँह से आ लगा।

सवारी ६ : अरे, वह तो मैंने अपनी खिड़की से बाहर थूका था, आपके ऊपर नहीं।

सवारी ३ : (गुस्से से) आपको दिमाग है कि नहीं। चलती गाड़ी में आगे की सीट से थूकियेगा, तो हवा से थूक पीछे वाले को पड़ेगा कि नहीं!

सवारी ६ : इस समझ के लिए जब आपको इतना दिमाग है, तो इतना दिमाग नहीं कि थूक से बचने के लिए खिड़की बंद करके चलें।

सवारी ८ : (पीछे से तेज आवाज में) अय खलासी, देखो ऊपर से कौन पान की पिरकी फेंक रहा है। कमीज को रंगीन बना दिया बेहूदे ने।

खलासी : अय, अय, कौन ऊपर से पिरकी फेंकता है जी? स्वर्ग में बैठेगा और आदत रखेगा नरक की।

[सामूहिक हँसी। गाड़ी अचानक रुकने की आवाज।]

खलासी : (धीरे से) अब क्या हुआ?

ड्राइवर : पैसेंजर है, माल ऊपर उठा लो!

कई सवारी : गजब करते हैं, ड्राइवर साहब आप, एक तो गाड़ी में पाँव भी रखने की जगह नहीं है, और उस पर सवारी को चढ़ाए जा रहे हैं।

सवारी ४ : देखिए न, और उसके साथ चावल गेहूँ के बोरे भी।

खलासी : सब हो जाएगा, सब हो जाएगा, आपलोग सिर्फ शांति बनाये रखिए। अय साहब, आप गेट से हटिए। पैसेंजर को ऊपर चढ़ने दीजिए। (गुस्से से) अरे मैं कह रहा हूँ न कि गेट छोड़िए!

सवारी ४ : (पीड़ा से) अरे रे रे, मेरे पैर को जूते से कुचल दिया रे।

सवारी ३ : (गुस्से से) अय साहब, बोरा बाहर रखिए।

सवारी ६ : (गुस्से में) कहाँ रखें, बाहर। मैं गाड़ी में रहूँगा और बोरा बाहर रहेगा। हटिए उधर, हटिए।

सवारी १० : के नै हटे छौ रे, जे नै हटौ, ते माथ्हैं पर राखी दैं।

सवारी ४ : नाश कर दिया चोट्टे ने।

सवारी ३ : क्या हुआ?

सवारी ४ : अरे होगा क्या, खिड़की पर लात रख कर गाड़ी के ऊपर चढ़ गया और जूते का सारा कीचड़ मेरी कमीज पर छोड़ गया।

खलासी : (गाड़ी की बॉडी को ठोकते हुए) बढ़ाइए।

[गाड़ी में क्रोध, घृणा के गलगुदुर आरंभ। बीच-बीच में कान फाड़ने वाले हार्न बजाती दूसरी गाड़ियाँ गुजरती हैं।]

सवारी ३ : कान फाड़ने वाली कैसी आवाज करता है।

सवारी ४ : ऐसी कि कान के परदे फट जाएँ ।

सवारी ३ : आदमी के बहरे, पागल होने का कारण आखिर क्या है? यही सब न।

सवारी १० : (पीछे की तेज आवाज) टेप चलाइये ड्राइवर साहब, टेप।

[भक्ति गीत का टेप शुरु होता है कि वही आवाज कुछ तेज

स्वर में।]

सवारी १० : ई कौन सा टेप लगा दिया, ड्राइवर साहब। मुडे खराब करने वाला। अरे, जरा रसवाला लगाइये न!

[टेप रुकता है, फिर शोरगुल वाला कोई रोमांटिक गीत शुरू होता है। गीत के साथ गाड़ियों के आने-जाने की आवाजें होती रहतीं हैं।]

[खर्राटे की तेज आवाज।]

सवारी ५ : अय साहब, अपने बल पर बैठिए, जरा सा आराम हुआ नहीं कि किसी के कंधे को तकिया बना कर खर्र-खर्र करने लगे।

[तभी किसी औरत के उल्टी करने की आवाज।]

सवारी ४ : (परेशानी में) अरे, अरे, आगे की खिड़की बंद कीजिए !

कई सवारी : (शोरगुल के स्वर में) अरे, गाड़ी रुकवाओ, नहीं तो मेरा उल्टी स्नान हो जाएगा।

सवारी ५ : बोरिया की तरह सवारी को कोचेगा, तो यही सब होगा।

सवारी ४ : लाख समझाओ इन गाड़ीवालों को कि लेडी को आगे मत बैठाओ. ..(रुक कर नाराजगी में) अय बूढ़ी, रोगी को लेकर पीछे बैठो।

बुढ़िया : हों रे बेटा, जनानी आगू में नै बैठेगा, खाली मरदुवे बैठेगा। जनानी सब पीछू में बैठ के गाड़ी का हुच्चा खाय-खाय के उछलेगा, यही न।

[सामूहिक हँसी।]

सवारी ३ : मत बोलिए; भाई जी, यह तो तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण का परिणाम है ।

[सामूहिक हँसी।]

बुढ़िया : हाँसी लो बेटासिनी, अभी तो तैंतीस प्रतिशत है, आगू तो सवो प्रतिशत होगा, तब सब हँसनी भीतर घुसियाय जाएगा।

[सामूहिक हँसी; उल्टी की आवाजें पुनः तेज।]

सवारी ५ : अय भाई साहब, जनानी को खिड़की के किनारे बैठने दीजिए। हवा लगेगी, तो सब ठीक हो जायेगा।

[टेप का गीत तेज होता है और गाड़ी की रफ्तार की आवाज भी तेज। आगे-पीछे की दो एक गाड़ियों का तेज आवाज के साथ गुजरना।]

सवारी ७ : लगता है, ड्राइवर का दिमाग सही सलामत नहीं है।

सवारी ८ : अय ड्राइवर साहब, गाड़ी धीरे हाँकिए, देखते नहीं, बाढ़ के कारण

सड़क कैसी बदहाल बन गई है।

सवारी ६ : बाढ़ ऊढ़ क्या करेगी, ई सब ठेकेदार का कारनामा है।

सवारी १० : और ठेकेदार भी क्या करेगा, सरकार जितना देगी, उतने में तो काम करेगा।

सवारी ३ : (झुंझलाया स्वर) इसमें सरकार का क्या दोष ? ठेकेदार बेईमान हो गया है, सौ बोरे की जगह पाँच बोरे देता है और सरकार पर दोष, चुप रहिए। जान की इतनी ही फिक्र है, तो पैदल जाइए। कमजोर जात का मुख्यमंत्री है, तो सब उसी का दोष। यही बड़की जात का होता, तो कोई कुछ नहीं बोलता ।

खलासी : अरे, आपलोग क्यों उलझ रहे हैं। अनजानी उतरने वाले गेट पर चलिए।

[गाड़ी का हार्न बजना और गाड़ी का रुकना, पर स्टार्ट जारी।]

कुछ सवारी : अरे, पहले उतरने तो दीजिए, फिर चढ़ियेगा।

सवारी ४ : न माने, तो उसके माथे पर चढ़कर उतर जाइए।

खलासी : अरे, आपलोग समझते क्यों नहीं। पैसेंजर को उतरने दीजिए, फिर चढ़ियेगा।

ड्राइवर : कटेलवा, सारे पैसेंजर से भाड़ा वसूल लिया है न रे ?

खलासी : ऊपरवाला बाकी है। देने में किचकिच करता है।

ड्राइवर : (भड़के स्वर में) साला कमीना, तो अभी तक कर क्या रहा था ? खाली खुर्री झाड़ने में लगा रहता है रे। मालिक का भट्टा बैठायेगा क्या रे, बद्जात। गाड़ी में क्या घुसा है, हरामी; ऊपर जाके भाड़ा वसूल !

[अचानक गाड़ी का स्टार्ट और टेप बंद।]

कई सवारी : अय ड्राइवर साहब, गाड़ी चलाते रहिए, भाड़ा तो दे ही देंगे।

ड्राइवर : दे कैसे देंगे, देना होता, तो अभी तक दे नहीं दिया होता। (अन्तराल) अय पुलिस जी, आपको कहाँ जाना है ?

पुलिस : ई गाड़ी जहाँ तक जायेगी, वहीं तक जायेंगे।

ड्राइवर : कटेलवा, इनसे भाड़ा ले लिया रे ?

खलासी : नहीं दिया।

ड्राइवर : चलिए, भाड़ा निकालिए।

पुलिस : अरे हमहूँ से भाड़ा लेव?

ड्राइवर : (प्रत्येक शब्द पर बल देते) और नहीं तो क्या, पुलिस जी, जब

आपलोग गाड़ी पकड़ कर अन्दर ठेल देते हैं, तो छोड़ देते हैं क्या? (क्रोध में) कटेलवा, बिना भाड़ा लिए गाड़ी पर एक भी आदमी नहीं रहेगा।

सवारी ४ : देखिए, ड्राइवर साहब, आप गाड़ी बढ़ाइए, सबको सब काम है।

कई सवारी : हाँ, हाँ, गाड़ी बढ़ाइए, हमलोगों की ट्रेनें छूट जायेगी।

[ट्रेनें की सीटी और गुजरने की आवाजें।]

कई सवारी : अरे, कौन सी ट्रेन है?

सवारी ५ : लगता है, विक्रमशिला ट्रेन स्टेशन लग रही है।

कई सवारी : ड्राइवर साहब, गाड़ी बढ़ाइए । भाड़ा तो मिल ही जायेगा ।

ड्राइवर : (उपेक्षा के स्वर में बड़बड़ाते हुए) क्या मिल जायेगा साहब, अपने आप किराया देने की आदत होती, तो देश की ये हालत नहीं होती।

सवारी १ : हाँ, देश तो आपकी ईमानदारी पर ही चल रही है।

सवारी ८ : एक तो पाँच हाथ की गाड़ी, जिस पर बिठाने की पचास सीटें हैं कोच लिया है पाँच सौ। साँसे घुटी जा रही हैं।

सवार २ : साँसे क्या इसी तरह घुट रही हैं, देखते नहीं हैं गाड़ी की हालत, किस तरह धुँआ उगलती चल रही है।

सवारी ७ : इन लोगों को सवारी की जान से क्या लेना! इनको तो पैसे चाहिए, पैसे। बस।

ड्राइवर : (रोष से) अजी, पैसे नहीं लेंगे, तो क्या मुफ्त में सबको घर पहुँचाते रहें। जिनका घर एक मील दूर है, वह भी गाड़ी से ही जायेंगे। न चढ़ाओ, तो लाठी खाओ, पत्थर खाओ, माँ बहन की गालियाँ सुनो।

कई सवारी : तो, आप गाड़ी रोकते ही क्यों हैं ?

ड्राइवर : अजी कैसे नहीं रोकें, वे दस में आकर जब मेरी गाड़ी को रोक लेंगे और जब मुझे खींचना शुरू करेंगे, तो आप में से एक भी ऐसा नहीं होगा जो चूँ भी बोल सके।

सवारी ६ : (गुस्से से) आप झूठ बोलते हैं; हर जगह पर गाड़ी रोकते, पैसेंजर को बुला-बुला कर उठाते हैं और कहते हैं कि

ड्राइवर : अरे उठायेंगे नहीं, तो क्या। रास्ते में गाड़ी चलाने का मतलब भी समझते हैं ? पूजा, समारोह, मजलिस सबके लिए चन्दा हमीं लोगों को भरना पड़ता है। (तेज स्वर में) कटेलवा, भाड़ा लिया रे ?

खलासी : हाँ, गाड़ी बढ़ाइए!

[फाटक खोलने और जोर से बंद करने की आवाजें, गाड़ी का स्टार्ट होना, तेज रफ्तार के साथ होर्न की ध्वनि भी।]

बुढ़िया : (जोर से) अय अय, तोरहै के बोल रहा है, आपनों बल्लों पर काहे नी ठाड़ा रहता है, जो हमरा पर झुकले जाता है।

सवारी ६ : (गुस्से में) अरे मैं क्या झुकूँगा, गाड़ी ही इधर झुकती जा रही है।

सवारी ६ : (भय से) अरे, रे, रे, रे ! गाड़ी बायीं ओर एकदम झुक गई है।

सवारी ६ : झुकेगी नहीं, देखते नहीं, पचीसों आदमी खिड़कियों पर पैर धरे खड़े हो गये हैं।

कई सवारी : (भय के स्वर) अरे रे रे रे, ड्राइवर साब गाड़ी एकदम धीरे हाँकिए, गाड़ी एकदम बायीं ओर झुक गयी है।

[गाड़ी की और भी तेज गति तथा हार्न की लंबी तेज आवाज।]

कई सवारी : अरे रे रे रे, अरे ड्राइवर का दिमाग सचमुच में खराब है क्या। एक तो पाँच सौ पैसेंजर को चढ़ा लिया है और उस पर तिनसुकिया की तरह गाड़ी हाँके जा रहा है।

सवारी : नवसिखुआ लगता है। इस लाइन में कोई खलासी, पाँच-छः रोज के लिए खलासीगिरी क्या करता है, ड्राइवर का बाप ही बन जाता है।

सवारी ६ : (उत्तेजना में) आगे बढ़ कर ड्राइवर का हाथ पकड़ लो।

कई स्वर : (भय से) अरे, ऐसा कुछ एकदम नहीं करिए। गाड़ी चलाते वक्त ड्राइवर से उलझना ठीक नहीं।

[गाड़ी से अचानक खड़-खड़ करने की आवाज का आना। भय मिश्रित कुछ शोरगुल तेज होता है।]

कुछ स्वर : अरे, यह कैसी आवाज है?

सवारी ६ : कुछ नहीं है, इस लाइन में गाड़ी का चलते-चलते इस तरह गड़गड़ाने लगना आम बात है।

सवारी ४ : लगता है, साइलेन्सर फट गया है।

सवारी ८ : नहीं, यह तो रेडियेटर की गड़बड़ी है।

सवारी ६ : नहीं भाई, लगता है पैनियन में कोई गड़बड़ी आ गई है।

ड्राइवर : (जोर से) कटेलवा, कैसी आवाज है रे?

खलासी : (जोर से) पचीसों पैसेंजर गेट पर लटके हुये हैं, चक्का मडगार्ड से सट रहा है।

[कड़कड़ की आवाजें कुछ और तेज हो जाती हैं।]

खलासी : अरे, आपलोग सुनते क्यों नहीं हैं, सारे पैसेंजर ऊपर चढ़ जाइए।

कई सवारी : (गुस्से में) चुप रहते हो कि नहीं, ऊपर पैर रखने की जगह तक नहीं है और ऊपर चढ़ जाइए।

[तेज गति से दूसरी गाड़ी के गुजरने की आवाज।]

कई स्वर : अरे, रे, रे, (राहत में) बच गए, यह ड्राइवर तो सब को जान लेके छोड़ेगा। एक तो ओवरलोड, उस पर इतनी तेज रफ्तार। गाड़ी सट जाती, तो अभी...

सवारी ४ : (गाड़ी की छत पर हाथ मारते) ड्राइवर साहब, गाड़ी रोकिए।

खलासी : क्या बात है?

सवारी ४ : टखना आ गया है, उतरूँगा।

खलासी : कैसे उतरियेगा, देखते नहीं कैसी भीड़ है। गाड़ी नहीं रुकेंगी।

सवारी ४ : (गुस्से में) मैं कहता हूँ, गाड़ी रोकते हो कि नहीं।

खलासी : मैं नहीं जानता, ड्राइवर से कहिए।

सवारी ४ : (जोर से) ड्राइवर साहब, गाड़ी रोकिए! (सवारी ४ रुक-रुक कर यही चिल्लाता है।)

कई स्वर : अरे साहब, गाड़ी नहीं रुकेगी, आप व्यर्थ चिल्ला रहे हैं। अब भागलपुर में ही उतरियेगा।

ड्राइवर : (भयमिश्रित जोर की आवाज में) कटेलवा!

खलासी : (भय के स्वर में ही) क्या है ?

ड्राइवर : लगता है, लाल गाड़ी आ रही है रे। पैसेंजर को नीचे उतारो, गाड़ी हल्की करवाओ !

खलासी : (सावधान करने के स्वर में) अरे, पुलिस की गाड़ी । देखिए, सारे पसेंजर उतर जाइए । पुलिस की गाड़ी आ रही है, अपनी-अपनी जान बचाइए !

['गाड़ी रोको, गाड़ी रोको' की चीख मचती है। गाड़ी रुकती है। व्यक्ति के कूदने और भागने की पदचाप के साथ शोरगुल।]

[जीप के गुजरने की आवाज।]

ड्राइवर : (राहत का स्वर) दूसरी गाड़ी थी, रे कटेलवा, नहीं तो आज नरक गये थे।

कुछ सवारी : तो ठीक है, अब तो गाड़ी आगे बढ़ाइए, ड्राइवर साहब, दस मिनट बच गये हैं, ट्रेन छूट जायेगी।

सवारी १० : (गुस्से से) छूट जायेगी तो छूट जायेगी। इस खलासी ने तो सबको

भगा दिया, अब मेरे लोग लौटेंगे, तभी तो गाड़ी खुलेगी।

कई सवारी : (गुस्से में ही) आपके लोग कोस भर दूर भाग गये हैं, तो क्या गाड़ी तब तक यहीं रुकी रहेगी ? (जोर से) ड्राइवर साहब, गाड़ी बढ़ाइए!

कई और स्वर : हाँ हाँ गाड़ी बढ़ाइए! दो, तीन किलो मीटर ही तो भागलपुर रह गया है, पैदल आ जायेंगे या दूसरी गाड़ी पकड़ लेंगे।

[गाड़ी स्टार्ट और कई सवारियों के ''हो, हो, हो'' के साथ 'गाड़ी रोकिए, गाड़ी रोकिए' की दूरागत आवाजें। गाड़ी के चल पड़ने की आवाज। सवार पैसेंजरों की प्रतिक्रियाएँ जारी होती हैं।]

सवारी १० : अब तो भागलपुर आ ही रहा है, एक बार टेप तो बजा दीजिए, ड्राइवर साहब।

[टेप बजता है- झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में, गीत समाप्त होने के पहले ही गाड़ी रुकती है।]

कई सवारी : अरे, अब क्या हुआ ?

सवारी ३ : गाड़ी तो पेट्रोल पंप पर ही आकर रुक गई है।

सवारी ४ : क्या गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी ?

कई सवारी : अजी, बढ़ेगी कैसे नहीं, बस स्टैंड तो अभी आधा मील दूर है, यहाँ से जाते-जाते तो ट्रेन ही छूट जायेगी।

सवारी ५ : फिर यहाँ से सामान भी कैसे ले जायेंगे। पुल पार करने का भाड़ा ही तो रिक्सेवाले छः रुपये से कम नहीं माँगेंगे।

कई सवारी : (आवेश में) ड्राइवर साहब, गाड़ी बढ़ाइए !

सवारी ६ : (व्यंग्य से) अरे, आप सब किस ड्राइवर से कह रहे हैं, वह तो गाड़ी से निकल कर जा भी चुका है।

सवारी ७ : (गुस्से में) खलासी किधर है ?

सवारी ६ : अरे साहब, खलासी भी ड्राइवर के पीछे-पीछे निकल चुका है। आपलोगों ने सुना नहीं, जाते-जाते कह गया कि गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।

नारी स्वर : (व्यंग्य से) अजी, आप सब काहे को चिल्ल पों कर रहे हैं, गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।

कई स्वर : अरे, यह इंजन की ओर से कौन बोल रही है ? लेकिन वहाँ तो कोई नहीं है।

स्त्री स्वर : मैं गाड़ी हूँ, गाड़ी। मैं ही बोल रही हूँ ।

कई स्वर : तो, तुम्हीं बताओ कि गाड़ी आगे क्यों नहीं बढ़ेगी, जब कि भाड़े

बस स्टैंड तक के लिये गये हैं।

स्त्री स्वर : अरे वाह, कैसे आगे बढ़ेगी, जबकि ड्राइवर के पास न गाड़ी चलाने का कागज दुरुस्त है और न इस गाड़ी का ही, और गाड़ी को तो कोतवाली होकर ही गुजरना था। फिर बताइए, गाड़ी कैसे आगे बढ़ सकती है। अब तो जितने कोतवाली वाले सावधान रहते हैं, उतने गाड़ी वाले भी। (व्यंग्य की हँसी) इसी से तो अब गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। (पुनः व्यंग्य की हँसी)

[सवारी के शोरगुल और प्रतिक्रियाओं के साथ गुदगुदाने वाला संगीत-प्रभाव।]

रास्ते और भी हैं

[आरम्भ संगीत।]

राकेश : ओफ, ओह, साढ़े नौ से ऊपर हो गये । अरी भाग्यवन्ती, क्या कर रही हो ?

शांति : (दूरागत ध्वनि) अभी कढ़ाई में सब्जी डाल कर आई ।

[गर्म कढ़ाई पर सब्जी डालने की दूरागत आवाज।]

शांति : (समीप का स्वर) कहिए, क्या है ?

राकेश : अरी, होगा क्या, भाग्यवंती, साढ़े नौ बज गये हैं। और मेरे स्नान के लिए अभी तक पानी भी तैयार नहीं हुआ ।

शांति : अभी तैयार हुआ, तब तक आप चाय तो पी लीजिए । यह रही आपकी चाय ।

राकेश : (सुड़कने की आवाज) धन्यवाद, कितना खयाल रखती हो। अगर तुम मेरे जीवन में नहीं आई होती, तो न जाने इस राकेश जी का क्या हुआ होता ।

शांति : बस बन्द कीजिए, यह झूठी तारीफ, अरे आप का नाश्ता तो उसी तरह पड़ा हुआ है ।

राकेश : क्या करें, कल कार्यालय की जाँच के लिए एक अधिकारी आ रहे हैं न, सारे कागजों को दुरुस्त तो करना ही था, नाश्ते को डब्बे में डाल देना, ऑफिस में ही दोपहर के समय खा लूँगा ।

शांति : यह रोज-रोज की बात है । खाना-खाना, न खाना, हमलोगों की जिन्दगी का नियम बन गया है । लगता है, जिस सुख-सुविधा के लिए हमलोगों ने नौकरी करने की बात सोची थी, कहीं वही हमलोगों से दूर हो गया है । (घबड़ाहट का स्वर) लगता है । सब्जी जल गई।

[भागती है, पदचाप।]

[दृश्यांतर।]

अभिनव : भैया, अभी चुपचाप पढ़िए, पिताजी के ऑफिस जाने का समय हो गया है। माँ भी चली जायेगी, तब हमलोग फिल्म देखेंगे ।

साकेत : हाँ, आज फिल्म भी बहुत बढ़िया है । वह पानवाला कह रहा था कि आज वह दुकान नहीं खोलेगा, सिनेमा देखेगा ।

क्रान्ति : तब तो जरूर बच्चों वाली फिल्म नहीं होगी। मैं माँ से कहे देती हूँ।

साकेत : चुप रहती हो कि नहीं ।

क्रान्ति : नहीं रहूँगी, मैं तो बोलूँगी ही ।

अभिनव : (धीमी डपट में), बोलेगी ?

क्रान्ति : (जोर देकर) हाँ बोलूँगी ।

अभिनव : बोलेगी ?

क्रान्ति : (और जोर देकर) हाँ, हाँ, बोलूँगी ।

अभिनव : तो, लो (चटाक की ध्वनि और दहलाने वाली रोने की आवाज।)

शांति : (दूरागत आवाज।) अरे क्या हुआ ?

[एक साथ कई बर्तनों के गिरने, ढनमनाने की आवाजें।]

राकेश : (घबड़ाहट का स्वर) अरे क्या हुआ ?

[तेजी से दरवाजा खुलने की ध्वनि।]

राकेश : अरे, तुम गिर कैसे गई ? ओह, मुँह से खून भी निकल पड़ा है। हाँ हाँ, जरा संभल कर उठो। काँच के टुकड़े इधर भी हैं। लेकिन यह हुआ कैसे ?

शान्ति : (कराह के स्वर में) कुछ नहीं, बाहर निकलना चाहती थी, बस हड़बड़ी में आँचल कढ़ाई से जा फँसा ।

राकेश : तुमसे कई बार कहा है, मरने दो बच्चों को । ये सब यूँ ही इसी तरह मारते-मरते रहेंगे, कितना इन लोगों के पीछे जान गँवाती रहोगी ।

शान्ति : कैसे छोड़ दूँ ? अपनी कोख के जने हैं ।

राकेश : तो, तुम देती रहो जान, इन लोगों के पीछे । अब देखो न किस तरह चुप हो गये हैं, जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं ।

शांति : बच्चे हैं, सहम गये होंगे ।

राकेश : (घृणा से) हुंह, सहम गये होंगे । तुम्हारे लाड़-प्यार के कारण ही ये बच्चे बिगड़ रहे हैं ।

शान्ति : (शांत स्वर में ही) लेकिन आप यह कभी नहीं कहेंगे कि हमलोगों के लाड़-प्यार के अभाव और उचित देख-रेख की कमी में ही ये बच्चे

बिगड़ रहे हैं ।

राकेश : अगर यह है भी, तो क्या करें ? नौकरी इन लोगों के कारण छोड़ तो नहीं दे सकता । अब छोड़ो खाना-नहाना । देखेंगे, टिफिन में आ सका, तो....। तुम्हारा भी सेंटर जाने का समय हो रहा है, मैं तब तक तैयार हो जाता हूँ ।

[दृश्यांतर।]

शान्ति : अभिनव ?

अभिनव : हाँ माँ ।

शान्ति : साकेत ?

साकेत : क्या है, माँ ?

शान्ति : क्रान्ति ?

क्रान्ति : क्या है, माँ ?

शान्ति : सब इधर आओ । (अन्तराल) देखो तुमलोगों के कारण आज भी पिताजी भूखे ही घर से निकल गये । अब मैं भी जा रही हूँ , खाना जो भी है, मिल के खा लेना । और हाँ, लड़ना नहीं ।

क्रान्ति : माँ, मुझे भी अपने साथ ले चलो । मुझे घर में नहीं रहना । मुझे घर में सब मारते हैं । पिताजी भी मारते हैं । नहीं हो, तो हॉस्टल में रहने की मेरी व्यवस्था कर दो, मैं वहीं रहूँगी (कहते-कहते रोने का स्वर।)

शान्ति : ठीक है, और दो चार महीने ठहरो, (अन्तराल) सुना ना, तुम दोनों भाइयों को शर्म आनी चाहिए, राक्षस हुये जा रहे हो । घर में एक बहन है, वह भी फूटी आँखों नहीं सुहाती है । इतना कुछ हाय-हाय किसके लिए करती हूँ, तुमलोगों के लिए ही तो । सुनो, चाची आती ही होगी । खाना खिला देगी । मैं जाती हूँ ।

[दृश्यांतर।]

[बच्चों का शोरगुल।]

पद्मा : अरे शान्ति, तुम इतनी लेट, सेक्रेटरी साहब आये थे । तुम प्राचार्य साहब से मिल लो ।

शान्ति : ठीक है ।

[दरवाजा खुलने-लगने की आवाजें।]

प्राचार्य : देखिए शान्ति जी, अगर आपके पास ठीक समय पर आने का वक्त

नहीं है, तो एक लम्बी अवधि के लिए अवकाश ले लीजिए । हफ्ते में तीन दिन तो ऐसे ही होते हैं, जब आपको ले कर मुझे कुछ-न-कुछ सुनना ही पड़ता है ।

शान्ति : सर !

प्राचार्य : कुछ नहीं । यह नौकरी है, महिला होने या घर की जिम्मेदारी के बहाने एक-दो दिन बचा जा सकता है, रोज-रोज नहीं। जाइए ।

[फाटक खुलने-लगने की ध्वनि। बच्चों का शोरगुल, जो दूरागत में तब्दील हो कर समाप्त।]

[दृश्यांतर।]

[दरवाजे पर दस्तक, दरवाजे का खुलना।]

राकेश : आज तुमने बहुत देर कर दी ? मैं तो पहले ही आ गया; सोचा था। महिनों हो गये, तुम्हारे साथ मिलकर नहीं खाया ।

शान्ति : हाँ, कुछ बात ही ऐसी हो गई थी । (परेशानी का स्वर) लेकिन घर में साकेत और अभिनव नहीं दिख रहे ?

राकेश : देख रहे होंगे कहीं, टीवी । जाते वक्त मैंने टीवी को लॉक जो कर दिया था ।

शान्ति : (परेशानी का स्वर।) अरे सात बज रहे हैं, आपने तलाश नहीं की ?

राकेश : यह काम तुम्हारा है ।

शान्ति : कौन-कौन से काम मेरे हैं, यही अब तक समझ नहीं पाई । सेंटर से छूटी, तो सब्जी खरीदने हाट में रुक गई । यह काम भी तो मुझे ही करना है। आप सबेरे लौट ही आये थे, तो बच्चों की खबर ले लेते कि आखिर बच्चे पड़े कहाँ हैं।

राकेश : मैंने कहा न, यह काम मेरा नहीं।

शान्ति : तो ठीक है, मैं ही ढूँढ़ लाती हूँ ।

राकेश : मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा, जल्दी आना ।

[दृश्यांतर।]

[घड़ी में पाँच बजने की ध्वनि।]

राकेश : शान्ति, अरे जागो भी, आज अधिकारी साहब तुम्हारे घर आने वाले हैं । मैंने ही आग्रह किया था। आज वह मेरे ही घर खाना खाएँ ।

शान्ति : (अनमने स्वर में) सर में दर्द है, थोड़ी देर रुक जाइए न ।

[चिड़ियों का कलरव।]

राकेश : बिल्कुल नहीं, लो चिड़िया भी तुम्हें जगा रही है । (कलरव तेज।)

शान्ति : तभी तो कहती हूँ कि स्त्रियाँ पुरुषों को अभी तक प्रिय हैं, जब तक वे घिरनी की तरह उनके पीछे घूमती रहें; आज ये आयेंगे, कल वो आयेंगे । आज ये करो, कल वो करो । तो, ठीक है, पहले आप भी तैयार हो लीजिए और इधर मैं भी सब तैयार किये देती हूँ ।

राकेश : ये रही न बात । (कोई गीत गुनगुनाता है।)

[दृश्यांतर।]

अभिनव : पिताजी, ये कालिदास कौन हैं और इनकी कितनी किताबें हैं ?

राकेश : क्यों; टीवी पर यह सब नहीं बताया गया ? (अचानक गुस्से में आकर) कल शाम कहाँ गये थे, तुम दोनों भाई ? अगर कल से बाहर गये, तो टाँग तोड़कर रख दूँगा, हाँ, दोनों कान उखाड़ लूँगा ।

[बच्चे के चीखने का स्वर।]

शान्ति : (दूरागत स्वर) अरे क्या हुआ ? (नजदीक का स्वर) बच्चे इस तरह से समझ भी नहीं सकते, जिस तरह से आप समझाना चाह रहे हैं। बच्चों के साथ रहकर इन्हें समझने की जरूरत है, और न इसके लिए आपके पास अवकाश है, और न मेरे ही पास । कभी हुआ भी है कि इनके साथ रहकर इनसे प्यार की बातें करें, पढ़ाएँ, समझाएँ ?

राकेश : मैंने कहा न कि यह मेरा काम नहीं है ।

शान्ति : और मैं भी यही समझना चाहती हूँ कि आखिर मेरे हिस्से में कौन-कौन से काम नहीं हैं ?

राकेश : (गुस्से में) वह सब, जो मैं नहीं कर सकता ।

[बच्चे का कपसना, फेड आउट।]

शान्ति : तो, मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि आपसे कौन-कौन काम नहीं हो सकते ?

राकेश : शान्ति, बहस मत किया करो । देखता हूँ, जबसे तुमको नौकरी मिली है, जुबान तेज हो गई है ।

शान्ति : मुझे अगर किसी बात का सबसे अधिक दुख है, तो इसी बात का कि आप मेरी किसी बात को गंभीरता से समझने की कोशिश नहीं करते। मेरी बातें बच्चों के भविष्य से जुड़ी हैं ।

राकेश : तो, यह भी तुम्हीं समझो ।

शान्ति : और जब सब मुझे ही समझना-करना है, तब आपको ?

राकेश : बहस मत किया करो । मैंने कहा न, आज तुम्हारे घर पर मेरे अधिकारी आ रहे हैं । तुम जल्दी से फ्रेस हो जाओ ! देर हो रही है, न जाने कब आ जाएँ ।

[कार की दूरागत आवाज, नजदीक आकर खत्म हो जाती है।]

[गाड़ी का फाटक खोलने और बन्द करने की आवाजें।]

राकेश : (आह्लाद से) प्रणाम सर, हम आपका ही इन्तजार कर रहे थे ।

अधिकारी : हाँ, मैंने भी सोचा कि जब जाना ही है, तो क्यों न कुछ पहले ही पहुँचा जाए ।

राकेश : बहुत अच्छा किया, सर । आइए, अन्दर आइए, सर ।

[फाटक के खुलने और बन्द होने की ध्वनि के साथ कुर्सी खिसकाने की आवाज।]

राकेश : बैठिए, सर । (ऊँची आवाज में) अरे सुनती हो, शान्ति, सर आ गये।

शान्ति : अभी आई ।

[कढ़ाई में सब्जी डालने की आवाज।]

अधिकारी : अरे आप कुछ तैयार मत करवाइए, मैं ठहरूँगा नहीं । चाय भर लूँगा।

राकेश : बस अभी हुआ, सर ।

अधिकारी : अरे, बिल्कुल नहीं, मैं कुछ पल के लिए ही रुक पाऊँगा । मेम साहिबा से मिलवाइए तो, बड़ी प्रशंसा सुनी है।

राकेश : अभी आया, सर । (अन्तराल हड़बड़ाते और फुसफुसाए स्वर में।) सुनती हो, सर रुकेंगे नहीं । तुम जल्दी चलो, वह तुमसे मिलना भर चाहते हैं ।

शान्ति : लेकिन मैं इस भेष में कैसे जा सकती हूँ ? फिर नास्ता तो तैयार कर लूँ ।

राकेश : (बेचैनी से) सुनो तो, वो रुकने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं ।

शान्ति : तो, मैं क्या करूँ ? उन्हें किसी तरह रोकिए । अभी फ्रेस होकर आई।

राकेश : ठीक है जल्दी आओ ।

(अन्तराल)

राकेश : वह आ रही है, सर, जरा ।

अधिकारी : कोई बात नहीं, राकेश; हमसब फिर मिल लेंगे । मैं अभी हड़बड़ी में हूँ । अभी चलता हूँ । (कुर्सी खिसकाने का स्वर।)

राकेश : सर, रुकिये, सर ।

अधिकारी : नहीं, फिर कभी । (कार का फाटक खुलने-बंद करने तथा स्टार्ट होने की आवाजें। (फेड आउट।)

शान्ति : अरे, अधिकारी साहब चले गये क्या ?

राकेश : सब तुम्हारे कारण । सब काम बर्बाद हो गया (अन्तराल) और इसी भेष में आ ही जाती, तो क्या हो जाता। चाय भी नहीं ली ?

शान्ति : आपका दिमाग ठिकाने पर तो है ?

राकेश : एकदम है । हम उनकी एक छोटी-सी इच्छा भी नहीं रख सके, जानती हो इसका परिणाम ?

शान्ति : क्या होगा इसका परिणाम ?

राकेश : मेरी नौकरी का प्रमोशन रुक सकता है, समझी ? मैं अभी निकलता हूँ, ऑफिस की तरफ । साढ़े नौ तक लौट ही आऊँगा, न लौटा, तो तुम मेरा इन्तजार मत करना; सेन्टर चली जाना ।

शान्ति : लेकिन यह कितना बुरा लगता है कि रोज-रोज खाना तैयार होने के बावजूद न आप खाना खा पाते हैं और ना मैं ही, यह भी कोई जिन्दगी है ? जा रहे हैं, तो सबेरे ही लौट आइयेगा, मैं भी सबेरे ही लौट आऊँगी ।

राकेश : (परेशानी में) ठीक है।

[दृश्यांतर।]

[बच्चों का शोरगुल, जो कांता और शान्ति के संवाद तक नेपथ्य में चलता है।]

कांता : अरे शान्ति, आज फिर तुम लेट ? और तुम्हारा दुर्भाग्य देखो कि आज सेक्रेटरी साहब फिर आये थे, तुम्हें बिना ऐप्लीकेशन के गायब पाकर आग बबूला हो रहे थे । जाओ, प्राचार्य साहब तुम्हें याद कर रहे हैं । कहा है, आने के साथ भेज देना ।

शान्ति : ठीक है, मैं आज स्वयं भी मिलना चाह रही थी ।

[दरवाजा खुलने की आवाज।]

प्राचार्य : शान्ति जी, आइए, बैठिए ।

शान्ति : क्या बात है, सर; आज आपने देर से आने के लिए गुस्सा नहीं किया?

प्राचार्य : मैं क्यों गुस्साऊँ, शान्ति जी, सेक्रेटरी साहब आये थे ओर आपकी गैर हाजरी पाकर .....

शान्ति : मुअत्तल कर दिया । यही न सर ?

प्राचार्य : हाँ, यही । आपको यह किसने कहा ? मैंने आपके लिए बहुत अनुरोध किया, लेकिन वह इतने नाराज थे कि (अन्तराल) और वह जैसा लिख गये हैं कि...

शान्ति : नहीं लगता कि यह नौकरी फिर मिलने वाली है । वैसे भी, सर, सेक्रेटरी साहब नहीं भी लिखते, तो भी आज नौकरी छोड़ने का ऐप्लीकेशन लेकर ही आई हूँ ।

प्राचार्य : लेकिन मैं बहुत दुखी हूँ, शान्तिजी; नौकरी छूटने के बाद आप करेंगी क्या ?

शान्ति : नौकरी छूटने के बाद में सबसे पहले अपने उन बिखरते बच्चों को संभालूँगी, जो मेरे बिना, मेरी अनुपस्थिति में वैसा ही बन रहे हैं, जैसा अपने माँ-बाप की देखरेख के अभाव में अधिकांश बच्चे बन जाते है; यह नौकरी, ये रुपये काहे को है, परिवार के सुख के लिए ही न, सर ! और जब मेरे, और मेरे पति का नौकरी में होने के बावजूद, घर ही बिखरा रहा हो तो यह नौकरी, यह धन काहे को ?

प्राचार्य : लेकिन शान्तिजी, ...

शान्ति : सर, यह रहा नौकरी से त्यागपत्र का मेरा ऐप्लीकेशन । आपने मेरे बचाव के लिए इतना कुछ किया, यही मेरे लिए काफी है । ऋणी हूँ । जाती हूँ, सर ।

[दरवाजा खुलने-बंद होने की आवाज, बच्चे के शोरगुल की आवाज तेज ।]

कांता : प्राचार्य साहब से क्या बातें हुईं, शान्ति ?

शान्ति : (बनावटी हँसी के साथ) कुछ नहीं, बच्चों की टिफिन हुई और मेरी छुट्टी ।

[दृश्यांतर ।]

[फाटक खुलने की आवाज ।]

शान्ति : अरे, इतनी जल्दी ।

राकेश : हाँ, साढ़े नौ बजे नहीं आ सका, तो आज ऑफिस से जल्दी ही लौट आया । सोचा, तुम भी आज जल्दी ही लौट आओगी । चलो, आज पूरे परिवार सहित मिल-बैठकर खाना खायेंगे, पीयेंगे । बस इसी से आज पहले ही आ गया । (प्रसन्नता के स्वर) तुमने भी तो यही सोचा होगा न !

शान्ति : चिन्ता मत करो, राकेश; आज से रोज ही जी खोल कर साथ-साथ खाया-पीया करेंगे ।

राकेश : कहने का मतलब नहीं समझा ।

शान्ति : मतलब कि मैंने नौकरी छोड़ दी ।

राकेश : (परेशानी) क्या कहती हो, शान्ति ? मैंने तुम्हारे लिए यह नौकरी कितनी मुश्किल से, कितनी परेशानी के बाद हासिल की थी, तुम्हें ज्ञात रहा कि नहीं ?

शान्ति : मुझे ज्ञात है लेकिन आपको शायद यह नहीं मालूम कि हम दोनों की इस नौकरी के कारण परिवार किस कदर अस्त-व्यस्त हो रहा है । सब कुछ घर की चाची पर छोड़कर तो नहीं चला जा सकता । भागमभाग के कारण हम लोगों की झुंझलाहट, फिर बच्चों का बिखरते जाना, क्या आपको इन सारी बातों का खयाल भी रहा ?

राकेश : लेकिन शान्ति, अब तुम क्या करोगी ? आखिर खालीपन को भरने के लिए भी तो..

शान्ति : रास्ते और भी हैं । आपको याद भी है या नहीं, अपनी वह पुरानी दुकान, जो आपने नौकरी पाने के बाद बन्द कर दी थी ?

राकेश : (हर्ष के स्वर) अरे हाँ, मैं तो उस दुकान को भूल ही गया था।

शान्ति : वही तो अपने पुराने दिनों में सुख-सुविधा की सखा रही । आज, हमदोनों को अलग-अलग नौकरियाँ मिलने से जितना सुख और आनन्द हासिल नहीं हो सका है, इससे अधिक उस छोटी-सी दुकान से मिलता रहा ।

राकेश : मैं भी स्वीकार करता हूँ, शान्ति । रुपये कमाने की दौड़ में लगता है— हमसब कहीं एक दूसरे से अपिरिचित होकर रह गये हैं, अपने घर में ही हम सब किरायेदार की तरह अलग-अलग हो गये हैं। वह दुकान थी, तो ऐसा कभी नहीं लगा था ।

शान्ति : आप ठीक कहते हैं, चलिए, आज उस सौभाग्य के द्वार को फिर से खोलें । यह द्वार अपने बच्चों के भविष्य के लिये भी होगा । नौकरी का संकट अपने देश का ही नहीं, यह तो पूरे विश्व का संकट है । लेकिन सबसे पहले मुझे अपने घर के संकट को टालना है । वैसे भी, अपनी नौकरी वाली स्वतंत्रता, किसी की नौकरी में कहाँ हो सकती है ! (प्रसन्नता से) तो, रेडी ?

राकेश : रेडी । (दोनों की खिलखिलाहटें।)

[समाप्ति-संगीत।]

दरसो-परसो घन, बरसो !

[आरम्भ के संगीत के अनन्तर सन्नाटे की सूचना देता संगीत और बादलों की गड़गड़ाहट, इसी के साथ वाद्य-रहित आह्वान के स्वर में गीत पाठ!]

बहुत तपी धरती यह अपनी, बरसो-बरसो बादल
दिन आवां-सा, रात आग-सी, अवधि चिता की सेज
पीत-पीताम्बर चिनगारी है जो था रखा सहेज
झनकाओ बिजली की पायल, अधरों पर हो मादल !
परती और पराँटों की ही बात नहीं है केवल
घर की दीवारों पर अब तो नागफनी लहराए
तुलसीचौरा पर चढ़ आने को बेकल दिखलाए
रेतों में उड़ते पलास हैं, पाटल, बेला, सेमल ।
उतरो बादल पर्वत पर, वन में, नदियों पर नाचो
हो समीर की साँसों में मधुगन्ध मदिर-सा होम
धरती की काया से निकले बाँस-वनों के रोम
साल, शिलन्ध्र, लांगली, जूही, सल्लकी महके पाँचो !
बाँसों के फूटे नव कोंपल, नील धरा पर छाए ।
बरसो बादल, अब न कामिनी या चकोर ललचाए !

[मेढ़को की टरटराहटें तेज हो कर क्षीण पड़ जाती हैं, कहीं झींगुर की आवाजें जारी, फिर बिजली की तेज आवाज। वर्षा की बूंदों की तेज, और हल्की आवाजें जारी।]

वाचक : अभी-अभी तो कुछ ही दिनों पहले, गर्म हवा के कारण, धूल के उड़ते हुए पहाड़ बादलों का भ्रम खड़ा कर रहे थे,

वाचिका : लेकिन आषाढ़ के आते-न-आते यह भ्रम बदल गया और सचमुच में

आकाश में बादलों के पहाड़ इधर-उधर उड़ते नजर आने लगे। आपस में टकराते, जोरों की आवाज करते।

[हठात बिजली की गड़गड़ाहटें, फिर शांत ।]

वाचक : नैऋत्व दिशा से आने वाली हवाओं के कारण जो धरती ग्रीष्म की अग्नि से जल रही थी,

वाचिका : नदियाँ सूख रही थीं,

वाचक : पोखर, तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ सूख गई थीं, और एक ही आवाज चारों ओर थी,

[सस्वर।]

एक स्वर : समय आग का कुण्ड; दहकती भू क्या, ऊपर नभ है
फटी हुई छाती पर्वत की, और नदी है रेत
अमराई के बीच पड़ी है कोयल गिरी अचेत
गंगा के भी नीचे साँसो का तपता सौरभ है ।
खेतों में चिनगारी की फसलें हैं पकी-पकी अब
जाने कब पछिया बह जाए चिनगारी को छू कर
गाँव, गाँव, खलिहान, मवेशी जल जाए धू-धू कर
सचमुच में क्या नहीं आयेगी पुरबा थकी-थकी, अब!

वाचिका : और इस विह्वल जन-पुकार को सुन कर ही जैसे पावस का प्रवेश होता है, मानसून का आगमन होता है ।

वाचक : वर्षा ऋतु का दूसरा नाम ही तो मानसून है, जो मौसम शब्द से निकला हुआ लगता है ।

वाचिका : बात कुछ भी हो, पावस के प्रवेश के साथ ही जैसे सारा दृश्य ही बदल जाता है।

वाचक : अहा, पुरुबा हवा किस तरह चल पड़ी है ! मेघों की गड़गड़हाट के साथ लगातार बूंदों की बौछार !

[बिजली की कड़क, हवा के झकोरे और वर्षा की ध्वनियाँ/फेडआउट।]

वाचिका : जल से भरी नदियाँ उन्मत्त हो बह चली हैं।

वाचक : और पोखर, ताल-तलैयों से मेढ़कों का शोर आना शुरू हो गया है ।

[मेढ़कों की तेज टरटराहटें, जो मद्धिम होकर गतिशील रहती हैं।]

वाचिका : कहाँ से आये इतने-इतने बादल। कहाँ समायेंगे इतने जल ? कहीं कवि घाघ की भविष्यवाणी का तो चमत्कार नहीं।

एक स्वर : माघ सुदी जो सप्तमी बिजुरी छैलें होय

चार महीना बरसें छै शंका करोॅ नै कोय ।

वाचक : मतलब यह कि माघ सुदी सप्तमी को अगर आकाश में घने बादल छाये रहे, बिजली भी कड़के, तो समझो कि चौमास में पावस खूब जमेगा।

वाचिका : घाघ हिन्दुस्तान में मौसम के पहले वैज्ञानिक थे । उन्होनें अन्य मौसमों की तरह, अपने अनुभवों के आधार पर, वर्षा ऋतु के संबंध में भी ऐसी -ऐसी भविष्यवाणियाँ की हैं जो कृषकों को ज्यादा विश्वसनीय लगती हैं।

वाचक : लेकिन आज के किसान सिर्फ घाघ की भविष्यवाणियों पर ही नहीं, भारत सरकार के मौसम सूचना विभाग पर भी निर्भर रहते हैं।

वाचिका : मानसून की भविष्यवाणी करने वाले ऐसे केन्द्र की स्थापना भारत में सन् १८७५ में ही हो गई थी, लेकिन पहली भविष्यवाणी तो सन् १८८१ में ही हुई,

वाचक : और सन् १८८६ से भारतीय मौसम विभाग ने मानसून की सूचना देने का जो सिलसिला शुरू किया, वह अब निरन्तर जारी है अब तो विभिन्न ऋतुओं के बारे में सूचनाएँ इकट्ठा करने वाले केन्द्र, इस देश में पाँच हजार से भी अधिक हैं, जो अन्य मौसमों के साथ-साथ वर्षा ऋतु की गतिविधियों पर विशेष नजर रखते हैं ।

वाचिका : और पूर्वानुमान से भारतीय कृषकों को मानसून के आगमन की तिथियों की जानकारी देते हैं।

वाचक : लेकिन आज भी ग्रामीण अंचलों में खेतिहार किसान, मौसम विभाग की सूचनाओं से ज्यादा भरोसा प्रकृति के बदलाव पर ही करते हैं; जैसे कि मेढ़कों का टरटराना।

वाचिका : लोकमत तो यहाँ तक है कि मेढ़क पावस ऋतु के देवता इन्द्र के सखा होते हैं, और इनकी पुकार पर ही इन्द्र जल की वर्षा करते हैं।

वाचक : इसी विश्वास के कारण बिहार में एक अजीब लोकाचार प्रचलित है; जब समय पर वर्षा नहीं आती, तो ग्रामीण औरतें मेढ़कों को ऊखल में रखकर कूटती हैं या इन्हें मार कर किसी के दरवाजे पर फेंक देती हैं ।

वाचिका : औरतों का यह लोकविश्वास है कि ऐसा करने से इन्द्रदेव अपने सखा की दुर्गति से पीड़ित हो अवश्य ही वर्षा करेंगे। इसके लिए मेढ़क को कूटने के साथ ये औरतें मनुहार के गीत भी गाती हैं,

समूह स्वर : इन्दर देव हो मेघ दें
कारी बभनिया चरखा काटै छै

हे इन्दर देव
मेघ दे, मेघ दे
हाली हुली इन्दर देवता
पानी बिनु परलों छै अकलवे ना, हे इन्दर देव

वाचक : लेकिन पूर्वी प्रान्त आसाम में, पावस को लाने के लिए, मेढ़कों को कूटा नहीं जाता, ना ही मारा जाता है,

वाचिका : वहाँ तो मेढ़क-मेढ़की का ब्याह रचाया जाता है, मनुष्यों की तरह।

वाचक : गाँववासी कहीं से एक मेढ़क और एक मेढ़की खोज लाते हैं, फिर वे ही लोग वर और वधू के पक्ष में भी बँट जाते हैं । मेंढ़क को पालकी में बिठा कर बाजे-गाजे के साथ वर पक्ष वाले कन्या मेढ़की के दरवाजे की ओर चल पड़ते हैं ।

वाचिका : लड़की पक्ष की स्त्रियाँ विवाह के गीत गाती हैं और वेद सम्मत प्रथमानुसार, पंडितों के मंत्रोच्चार के साथ, मेढ़क का ब्याह होता है ।

[मंत्रोच्चार; शहनाई और गीत के स्वर।]

वाचक : पालकी पर चढ़ कर मेंढ़की मेढ़क के साथ फिर ससुराल भी आती है।

वाचिका : यहाँ यह लोकविश्वास है कि मेढ़क-मेढ़की को, व्याह के अवसर पर जब स्नान कराया जाएगा, तब वे दोनों टरटरायेंगे ही, और जब ये टरटरायेंगे, तब इन्द्रदेव भी अपने आप को रोक नहीं सकेंगे ।

वाचक : और तब आकाश बादलों से भर जायेगा ।

[बादलों की गड़गड़हाटें, मेढ़कों की सम्मिलित आवाजें।]

वाचिका : लेकिन लोकविश्वासों में वर्षा का पूर्वानुमान सिर्फ मेढ़कों की टरटराहटों से ही नहीं लगाया जाता,

वाचक : जंगल में मोरों के नृत्य और कूजन प्रारंभ हो जाए, तो जानिए कि वर्षा एकदम निकट है ।

वाचिका : और कहीं रीवा नाम की चिड़िया, घर के समीप आकर, आवाज देने लगे, तब भी समझा जाता है कि वर्षा का आगमन निकट है।

वाचक : जब इनसे भी वर्षा न आए,

वाचिका : तब संगीत का सहारा लिया जाता है और मल्हार राग गूँजता है, बादलों की बुलाहट के लिए,

[मल्हार राग में गीत की कुछ पंक्तियाँ।]

वाचक : मल्हार राग के उठते ही, कहा तो यही जाता है कि बादल भी आकाश तक उठ आते हैं, और फिर शुरू होती है— बादलों की गड़गड़ाहट ।

[वर्षा की तेज आवाजें।]

वाचिका : फिर तो वर्षा के आगमन की खुशी में धरती ही संगीतमय हो जाती है, एक साथ देश राग और मल्हार के संयोग से ।

वाचक : मल्हार ! वर्षा के अभिनन्दन का राग । कहीं मियां तोड़ी का मल्हार, तो कहीं सुर मल्हार और कहीं रामदासी मल्हार ।

वाचिका : राग मल्हार के साथ वर्षा के संगीत का महायोग ।

वाचक : लेकिन वैज्ञानिकों को ऐसे विश्वासों पर भरोसा नहीं होता । ये नहीं मानते हैं कि मेढ़कों को कूटने, इनके ब्याह रचाने या संगीत से बादलों को बुलाया जा सकता है ।

वाचिका : इनका तो बस यही मानना है कि ग्रीष्म काल में, सूर्य की प्रचण्ड गर्मी के कारण, जब समुद्र का जल वाष्प बन कर आसमान की ऊँचाइयों तक पहुँच जाता है, तब यही वाष्प घनीभूत और नमीयुक्त होकर वर्षा के रूप में तेज गड़गड़ाहटों (पृष्ठभूमि में वर्षा की गड़गड़ाहट और वर्षा की आवाजों) के साथ उतर पड़ता है ।

[पृष्ठभूमि की आवाजें तेज : फेड आउट।]

वाचक : लेकिन वर्षाकाल में भी सभी गड़गड़ाने वाले बादल वर्षा नहीं करते।

वाचिका : लोकभाषा के कवि डाक गुआर ने लिखा है

एक स्वर : तितिर पांखे मेघ, विधवा करे शृंगार
इत बरसे अत उड़रे, कह गए डाक गुआर।

वाचक : जब बादल तित्तिर पंक्षी के रंग का हो जाए, तो जोर-शोर से बारिश करने वाले उन मेघों को देखकर विधवा भी शृंगार करने लगती है, इधर उस वर्षा का बरसना शुरू होता है और उधर वह वियोग से विदग्ध हो, घर से भाग निकलती है ।

वाचिका : लेकिन वैज्ञानिक, बादलों के रंग पर नहीं, बादलों की ऊँचाइयों को ध्यान में रखकर इस बात की घोषणा करते हैं कि ये बादल कितना बरसने वाले हैं ।

वाचक : और ऊँचाइयों के आधार पर ही वे इन बादलों को पक्षाभ मेघ, वर्षा मेघ, कपासी मेघ और स्तरी मेघ कहते हैं ।

वाचिका : पक्षाभ या रोम गुच्छा के नाम से कहे जाने वाले मेघ, आकाश पर बीस से तीस हजार फीट की ऊँचाईयों पर पाये जाते हैं । ऐसे मेघ वर्षा की बूंदे नहीं, ओलों को बरसाते हैं ।

वाचक : कारण यह है कि इतनी ऊँचाइयों पर अत्यधिक ठंड के कारण इन

पक्षाम मेघों में, पानी की जगह, बर्फ के कण जम जाते हैं ।

वाचिका : जो मेघ हमें वर्षा देता है, वह तो वर्षा मेघ ही है, सात हजार फीट की ऊँचाइयों पर रहने वाला और मोटी सतहों तथा काले रंग का वर्षा मेघ!

वाचक : इस वर्षा मेघ के छाते ही दिन भी रात में परिवर्तित हो जाते हैं ।

वाचिका : और जिससे, बिजलियों की तेज कड़कहाड़ट के साथ, धरती को डुबो देने वाली वर्षा भी हो चलती है ।

[बादलों की तेज ध्वनि; फेड आउट।]

वाचक : लेकिन एक ऐसा भी मेघ है, जो गरजता तो खूब है, वर्षा मेघ की तरह ही, बिजलियाँ भी खूब कड़काता है, लेकिन पानी नहीं देता।

वाचिका : यह मेघ, दूसरा कोई और नहीं, कपासी मेघ ही है । साढ़े चार हजार फीट की ऊँचाइयों पर रहने वाला । रूई के ढेर की तरह फैला । कहते हैं न, गरजे सो बरसे नहीं, बस यही है वह कपासी मेघ ।

वाचक : कपासी मेघ से तो अच्छा है स्तरी मेघ ।

वाचिका : जो पाया तो जाता है सिर्फ लगभग साढ़े तीन हजार फीट की ऊँचाइयों पर ही, लेकिन इसे अगर पर्वत का सहारा मिल जाए, तो ऊपर उठते हुए, और ठण्डा होकर वर्षा भी देने में नहीं चूकता । कृपण से तो थोड़ा देने वाला ही भला ।

वाचक : वैसे बहुत अधिक वर्षा करने वाले मेघों के कारक, महासागर से उठे मानसून ही नहीं होते,

वाचिका : कभी-कभी भयंकर चक्रवात के साथ जो प्रलयकारी वृष्टि होती है, उस चक्रवाती वर्षा का कारण है— ठंडी और गर्म वायु का संयोग।

वाचक : होता यह है कि महासागर की गर्म हवा जब स्थल की ठण्डी हवा की राशि में, गर्म होने के कारण, शीघ्रता से प्रवेश कर जाती है,

वाचिका : तब ठण्डी हवा उस गर्म हवा को, भीषण तेजी से, तीनों ओर से घेरना चाहती है, जिसके कारण ही चक्रवात का जन्म होता है।

वाचक : और ठण्डी हवा के संपर्क में आकर उच्च दाब वाली गर्म हवा विरल होकर, ठण्डी हवा के ऊपर फैल जाती है, जिसके कारण ही इसमें जल बूंदों का निर्माण हो जाता है, और फिर उस भीषण चक्रवात की स्थिति में ही भयंकर वर्षा भी शुरू हो जाती है ।

[आंधी और वर्षा की ध्वनियाँ ।]

वाचिका : समुद्री सीमाओं पर उठनेवाली ऐसी चक्रवाती वर्षा अपने साथ भयंकर जनहानि और पर्यावरण-क्षति को लेकर आती है । एक प्रलयकारी

दृश्य चारों ओर बिछ जाता है ।

[करुण संगीत।]

वाचक : लेकिन संवहनीय मानसून के कारण आये मेघ,

वाचिका : अर्थात ग्रीष्मकाल में सूर्य की गर्मी से जब वायु विरल हो कर ऊपर उठ जाती हैं, और बिल्कुल ठण्डी पड़ कर वर्षा मेघ का रूप ले लेती है,

वाचक : तब ऐसे वर्षा मेघ महाविनाश की जगह नई सृष्टि को जन्म देने का ही कार्य करते हैं ।

वाचिका : ऐसे मानसून और मेघों के कारण सृष्टि का रूप ही निखर जाता है ।

वाचक : आकाश से ही नहीं, धरती से भी धूल के कण गायब हो जाते हैं ।

वाचिका : नये सृजन की आकांक्षा लिए आकाश मार्ग से बगुलों की जोड़ियाँ, पंक्तिबद्ध हो, गुजरती नजर आती हैं । धरती पर नानाविध जलप्रेमी पंक्षी जल किल्लोल करते नजर आने लगते हैं । पपीहें की आवाज से धरती के प्राण ही व्याकुल हो उठते हैं ।

[पपीहे, हंसादि के स्वर।]

वाचक : मानसून की बौछार के कारण धरती अवश्य कीचड़मय हो उठती है, कहीं बाढ़ के कारण विनाश भी होता है, लेकिन इसी बौछार से नया जीवन भी उमड़ता है ।

वाचिका : जहाँ वर्षा में स्नान कर पर्वत और वृक्ष धुले-धुले योगी-संन्यासी-से नजर आते हैं,

वाचक : वहीं, बाँसों में नए कोपलों का सृजन शुरू हो जाता है, अर्जुन के वृक्षों में नई मंजरियों का विकास हो चलता है,

वाचिका : और कि जहाँ कदम्ब के कुसुमों से धरती सुगंधित होने लगती है, वहीं जूही की सुगंध से सारा वातावरण ही मदोन्मत्त हो उठता है । सिर्फ साल और शिलान्ध्र के फूलों की ही बात नहीं है,

वाचक : गर्मी से तपी धरती भी वर्षा का प्रथम स्पर्श पाते ही जाने कैसी तो सुगंध बिखेर देती है ।

वाचिका : और यही धरती जो ग्रीष्म की लू के कारण कितनी पीली पड़ गई थी, अब हरी घास और जंगल में फैले नीली के पत्तों में ऐसे लगती है, जैसे, धरती हरी साड़ी पहन कर नीली चादर पर लेटी हो ।

वाचक : इस वर्षा ऋतु में, हिरणों का प्रेम किसे नहीं प्रेम से भर देता ।

वाचक : वर्षाकाल का मेघ प्रेमियों के लिए किस तरह से घातक बन जाता है। इस ऋतु में मिलन की आकांक्षा से उन्मादित भी उठते हैं, प्रेमी । इसी

कारण तो किसी शाप को जीते हुए कालिदास के यक्ष ने जब आषाढ़ के प्रथम दिवस में ही किसी मतवाले हाथी की तरह बादलों को देखा था ।

वाचिका : तब वर्षा ऋतु में ही खिलने वाले कुटज के फूलों को उठाकर उस मेघ से अपनी प्रिया तक यह संदेश पहुंचाने को कहा था।

निदेशक : संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियाय
संदेश में हर घनप्रतिक्रोध विश्लेषितस्य
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वरां
बाह्मोद्यान स्थिहर शिरचंद्रिकाधौतहर्म्या

वाचक : प्रेमियों के लिए यह वर्षा ऋतु चाहे जितनी भी दाह उत्पन्न करने वाली हो,

वाचिका : लेकिन अपने कृषि प्रधान देश में तो यह पावस कृषकों और कृषि के लिए संजीविनी की तरह है ।

[पृष्ठभूमि में बैलों की घंटी तथा ट्रैक्टर की आवाजें।]

वाचक : अगर अपने देश में वर्षा ठीक समय पर ठीक से न आए, तो राष्ट्र का समूचा आर्थिक ढाँचा ही चरमरा जाए । आखिर हमारे आर्थिक ढाँचे का आधार कृषि ही तो है।

[गीत पाठ।]

नारी स्वर : पैहिले गौनावाली दुलहिन छिनमान लागै छै बरसात
खूब सलेटी, जमुनी साड़ी पिन्हलें आवै छै बरसात
सोन्हों-सोन्हों की रँ महकें लागलै ई माँटी-माँटी
दूध-दही पोरैलों की कन्तरी सोन्हावै छै—बरसात
अबकी अगहन के खोचों लावा-धानों सें भरवे करतै
जे रँ पलथी मारी-मारी सगुन रचावै छै बरसात
ई धुम्मां मन कें की होलों छै तपले जे चल्लों जाय
जबकि जल हेमाल लेलें ई आग सिरावै छै बरसात

वाचिका : कृषि व्यवस्था दुरुस्त रहे, यही सोचकर वर्षा ऋतु हमारे देश में दो बार आती है-- ग्रीष्मकालीन वर्षा, जो मध्य जून से लेकर प्रायः सितम्बर तक बनी रहती है ।

वाचक : और शीतकालीन वर्षा, जो प्रायः सितम्बर से शुरू होकर जनवरी तक बनी रहती है ।

वाचिका : दोनों ही वर्षा के कारण देश की धरती फसलों से हरी भरी रहती है ।

वाचक : इसीलिए तो यह वर्षा ऋतु, ऋतु ही नहीं है, महादेवी है, संपूर्ण मानव जाति की रक्षिका। वर्षा नहीं हो, तो अन्न नहीं हो; अन्न नहीं हो, तो मनुष्य कैसे बचेगा ?

वाचिका : फिर धरती पर यह जल भी कहाँ से आयेगा ?

[शोक संगीत का उभार।]

वाचक : अभी तो वर्षा का यह जल हमारे देश को लगातार सींच रहा है,

वाचिका : लेकिन जिस तरह मनुष्य ट्यूब वेलों की सहायता से भूमिगत जल को खींचता जा रहा है,

वाचक : और जंगल का बेहिसाब कटाव भी कर रहा है तब आने वाले समय में जल का संकट कैसा होगा कहना कठिन है, कितना भयावह,

वाचिका : तब धरती पर जल ही कहाँ होगा ।

[पृष्ठभूमि में करुण संगीत और सघन।]

वाचक : सूख जाएँगी ये बहती-खलखलाती नदियाँ ।

वाचिका : सूख जायेंगे ये कुएँ, पोखर, बावड़ी, बाँध, ताल और तलैया ।

वाचिका : भारत की चेरापुंजी में, जहाँ कभी घने वनों के कारण सर्वाधिक वर्षा हुआ करती थी, वहाँ वनों की कटाई के कारण जल-संकट उभरने लगा है ।

[करुण संगीत तेज, फेडआउट।]

वाचिका : पर्यावरण के रक्तशोधक वन ही जब खत्म हो जायेंगे, तब मानसून की उम्मीद भी हम कैसे कर सकते हैं ।

वाचक : रासायनिक कचरों का ढेर, धरती और कारखानों की चिमनियों से निकलते कार्बनडायऑक्साइड के जहरीले बादल; इनमें नहीं रह सकता हमारा मानसून, नहीं रहेंगे वर्षा के हमारे ये मेघ !

वाचिका : तब वर्षा मेघ की तरह भौंरे के दल भी कहीं गुंजार करते नहीं दिखाई देंगे । और फिर सावन में नहीं लगेंगे झूले, नहीं गायी जायेगी कजरी तब यही होगा कि आते हुई न तो आर्द्रा कुछ जल देगी, न तो जाते समय पर हथिया नक्षत्र ही, और बेमौत मारे जाएंगे पाहुन संग गृहस्थ। वर्षा के मेघ तब भी नहीं आयेंगे, भले ही हम गीले कण्ठों से उन्हें बुलाते ही रहेंगे,

[गीत पाठ।]

निदेशक : झर झरो पावस सजीले !
आज क्यों हठ ओ हठीले ?

शुष्क अधरों पर किसी के
स्वर नहीं, व्यंजन नहीं है,
किस तरह से तन रंगे मन
सामने रंजन नहीं है;
हैं हरे सब पीत-नीले,
सुर सुरीले झनझनाए
चन्दनों की डालियों में
शूल के दल निकल आए;
हैं विरस अब ताप से तप;
बोल ! प्राणों के रसीले ।
[करुण संगीत की झंकृति।]

उसका महाभारत

[आरम्भ का संगीत।]

उषा : खाना खा लीजिए, तब कहीं जाइयेगा ।

सोमेश : (खीझ) तुम समझती क्यों नहीं, पूर्णिया से क्रांति के सम्पादक अतीश बाबू आ रहे हैं, खास कर मुझसे मिलने के लिए।

उषा : रोज-न-रोज आपसे मिलने कोई-न-कोई आते ही रहते हैं, कभी पूर्णिया से अतीश बाबू, कभी बनारस से छत्तीस बाबू और कभी दिल्ली से चालीस बाबू ।

सोमेश : देख रहा हूँ, तुम्हारी जुबान जरूरत से ज्यादा लम्बी होती जा रही है।

उषा : भगवान की कृपा है, आपलोगों के कारण यह जीभ हमेशा काली की तरह बाहर नहीं निकली रहती ।

सोमेश : नहीं तो छाती पर ही खड़ी रहती । क्या ?

उषा : शुक्र मनाइए कि मेरे माँ-बाप ने मुझे अपने ही साँचे में ढाला है । (अन्तराल) मैं खाना परोस देती हूँ, अपने साथ-साथ माँ को भी खिलाते जाइए । दिन भर के महाभारत से दस मिनट की देर अच्छी। मैं अभी आई ।

[दूरागत बर्तनों की खनखनाहट।]

सोमेश : महाभारत ! महाभारत का कारण द्रौपदी भी तो तुम्हीं हो । खा-म-खा मुझे अर्जुन बनाकर सबकी हत्या करवा रही हो । अर्जुन, हूँह, मैं अर्जुन नहीं, इस घर के घर-घर में एक शिखंडी हूँ, बस एक शिखंडी।

उषा : (पुकारने का दूरागत स्वर) शिप्रा । अरी सुनती नहीं हो, मर गई क्या !

शिप्रा : (दूरागत) आई, माँ !

उषा : (झुंझलाहट) जब तक रेल इंजन की तरह चिचयाऊँ नहीं, तब तक

मुँह में लावा फूटने वाला नहीं । करमजली, इतने ही चैन से रहना था, तो राजा जनक के घर जाकर जनमती (अन्तराल) अरी खड़ी-खड़ी मुँह क्या ताक रही है, पिता और दादी का चौका लगा आ ।

शिप्रा : लेकिन, पिताजी को तो बाहर जाते देखा ।

उषा : (उदास स्वर) चले गये, मेरे इतना रोकने पर भी ? इतने ही दूसरे लोग प्यारे हैं, तो शादी ही क्यों की मुझसे ?

शिप्रा : माँ, दादी को खाना दे आऊँ ?

उषा : दे आओ, और सुनो, अगर पिताजी आयें तो खाना खिला देना । मैं आफिस जाती हूँ । (प्लेट रखने की ध्वनि।)

शिप्रा : और तुम खाना नहीं खाओगी, माँ ।

उषा : तुम्हारे पिताजी मुझे खाने दें तब ना । उन्हें उनको अपना संस्कार छोड़ता ही नहीं और मुझे मेरा संस्कार । खाना नहीं खाऊँगी, तो उतनी नहीं मरूँगी, जितना खाना खाकर यह सोचते-सोचते कि तुम्हारे पिता ने खाना नहीं खाया, और मैं पेट में उलट आई ।

[दृश्यांतर।]

[दरवाजा खड़खड़ाने और खुलने की ध्वनि।]

सोमेश : तुम्हारी माँ अभी तक नहीं लौटी ?

शिप्रा : नहीं लौटी ।

सोमेश : खाना खा के गई है ?

शिप्रा : नहीं ।

सोमेश : (गुस्सा) तुमलोग कर क्या रही थी । तुमलोग के लिए रसोई का इंधन जलता ही रहेगा और तुम्हारी माँ उधर पेट के इंधन से जल मरे। तुमलोग यही चाहते हो न ?

शिप्रा : पिताजी, मैनें तो माँ से कहा ही था, खा लेने के लिए, लेकिन कहा— जब आपने ही नहीं खाया तो .....

सोमेश : बस, मुझे चिंता में घुला-घुला कर मारना चाहती है । यह औरत नहीं, पूर्व जन्म की मेरी शत्रु है, शत्रु। भूख-प्यास से दिनभर ऑफिस में मरेगी (साँस छोड़ता है) और शिप्रा तुम, जब तुम इतना-सा भी काम नहीं कर सकती, तो जी के क्या कर रही हो !

[तेजी से बढ़ने और चांटे की आवाज।]

शिप्रा : (बिलखती हुई) पिताजी ?

सोमेश : (ऊँचे स्वर में) ऊपर कोई है ?

शिप्रा : (कलपती हुई) नहीं ।

[ऊपर चढ़ने की ध्वनि : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[दरवाजा खुलने की आवाज, कपसने की आवाज तेज।]

उषा : क्यों, क्या हुआ ? रो क्यों रही हो ?

शिप्रा : पिताजी ने पीटा ।

उषा : क्यों ?

शिप्रा : इसलिए कि मैंने तुम्हें खाना खाये बगैर जाने दिया ।

उषा : पिताजी कहाँ हैं ?

शिप्रा : ऊपर वाले कमरे में हैं ?

उषा : इतनी ही मेरी फिक्र होती, तो स्वयं खा के और मुझे खिला कर अपने मित्र से मिलने जाते। (शिप्रा का कपसना) चुप हो जाओ । और हाँ सुनो । मेरे सर में दर्द है । खाना बना लेना, पिताजी को भी खिला देना ।

शिप्रा : (कपसते हुए) पिताजी को मैं नहीं खाना खिलाऊँगी। उनके भूखे रहने पर, जब भी खाना लेकर उनके पास तुम मुझे भेजती हो, मुझे पीटते हैं (रोना।)

उषा : (गुस्सा) अब रोओगी, तो मैं भी खींचकर एक झापड़ लगा दूँगी । पिताजी ने एक चाँटा लगा ही दिया, तो कोई गर्दन नहीं उखड़ गई। जाओ, खाना बनाओ । मैं सो जाऊँ, तो जगाना मत ।

[जाने की पदचाप।]

[दृश्यांतर।]

[दरवाजा खुलने की आवाज।]

शिप्रा : पिताजी, खाना !

सोमेश : माँ कहाँ है ?

शिप्रा : सर में दर्द है, सोई हुई है ।

सोमेश : खाना ले जाओ । और सुनो, दरवाजा नहीं खोलना ।

[दरवाजा बंद होने और नीचे उतरने की पदचाप।]

उषा : क्या पिताजी ने खाना नहीं खाया ?

शिप्रा : कब खाया है ? तुम तो खा-म-खा मुझे डाँट पड़वाने पर लगी रहती हो ।

उषा : दादी का खाना परोस दो और तुम भाई-बहन भी खा लो। मुझे फिर जगाना नहीं । कल सुबह ही दफ्तर जाना होगा ।

[दृश्यांतर।]

[झींगुर की ध्वनियाँ।]

सोमेश : सो गई हो क्या ? (अन्तराल) तुम से ही कह रहा हूँ, सो गई क्या ?

उषा : (चुप)

सोमेश : सो गई हो, तो जाता हूँ ।

उषा : खाना खा लीजिए, तब जाइएगा ।

सोमेश : मुझे मालूम था, तुम जाग रही होगी । चलो, खाना लगा दो और सुनो, अपने लिए भी लगाती आना । साथ-साथ खा लेंगे ।

उषा : आप खाना खा लीजिए तो मैं खा लूँगी ।

सोमेश : यह नहीं होगा, मैं खाना खा लूँ और फिर खाना के लिए ही मुझे.. (भोलेपन में) यह नहीं होगा, हाँ ।

उषा : कब मनाया है जो आज मनाइयेगा । तीन बच्चे की माँ बनने के बाद भी मान-मनुहार मैं नहीं जानती । बैठिए, मैं अभी आई ।

[झींगुर की आवाज तेज, फेड आउट।]

[दरवाजा खटखटाने की आवाजें।]

सोमेश : लो, इतनी रात गये अब कौन आ टपका (जोर से) कौन है ?

कौशल : मैं कौशल ।

सोमेश : लो, तुम्हारा भाई कौशल आ पहुँचा, अब घर को लूटपाट और हाहाकार से बचाओ, और क्या ।

उषा : (दाँत पीसती, धीरे से शांत करने के स्वर में) चुप भी रहिए न । आपको तो लोकाचार का कुछ भी कुछ ज्ञान नहीं, कहने को बनते हैं पत्रकार ।

सोमेश : (और कुछ तेज स्वर में) चुप क्यूँ रहूँ, इस शहर में आकर क्या बसा कि संबंधियों की आवाजाही से यह घर कबूतर की भाँड़ी बन कर रह गया है । आया, दाना चुगा और बीट कर उड़ते बने ।

उषा : (और भी गुस्से में दाँत पीसकर) चुप भी रहते हैं कि नहीं .....

सोमेश : नहीं तो क्या, मेरा गला दबा दोगी ?

उषा : (पूर्व स्वर में) नहीं, मैं अपना गला दबाकर मर जाऊँगी ।

[दस्तक।]

सोमेश : (मृदुल पर तेज स्वर में) खोल रहा हूँ भाई, खोल रहा हूँ, जरा चाभी खोज रहा हूँ (घृणा से दाँत पीसते हुए) यह नहीं हुआ, कि इतनी रात हो गई, होटल ही बुक कर लूँ। चले आये यहाँ, बाप की डीह समझकर।

उषा : (दाँत पीसकर) अब एक दिन आ ही गये, तो आपका माथा पहाड़ क्यों बना जा रहा है ।

सोमेश : यह एक दिन की बात नहीं है । कभी कौशल, कभी क्रांन्ति, तो कभी भ्रांति, कभी पमपम, तो कभी चमचम, और फिर सबकी सेवा में खड़े रहो ।

उषा : आप तो नहीं करते ।

सोमेश : माना तुम्हें ही करना पड़ता है, क्या समझती हो, मुझे दुःख नहीं होता।

उषा : (पूर्व स्वर में) दुःख होता, तो कम-से-कम चुप रहते । मेहमान का कुछ करना ही पड़ता है, तो क्या । माँ का दिन-रात किया करती हूँ, कभी मना तो नहीं करते । (अन्तराल) चुप नहीं रहा जाता, तो ऊपर जाइए, मैं दरवाजा खोलने जाती हूँ ।

सोमेश : ठीक है, ठीक है । मैं ऊपर जाता हूँ । तुम भाई के चरण धोकर पीयो

[सीढ़ियों पर पदचाप/फाटक खुलने का ध्वनि ।]

कौशल : (प्रसन्नता से) उषा (जूते की आवाज) क्या कहूँ , पाँच घंटे लेट आई तीनसुकिया ।

[दरवाजा लगने की आवाज।]

सोचा यहीं रुक जाऊँ । वर्षों से सोमेश बाबू से मुलाकात भी नहीं हुई, मिलना भी हो जायेगा । जब भी गाँव लौटता हूँ, माँ यही कहती है; रास्ते में उषा का घर पड़ता है, यह भी नहीं होता कि बहन से मिलते आऊँ । तुम लोगों का युग-जमाना कैसा आ गया कि खून भी पानी होने लगा है (हँसी) माँ को आज के लोगों की व्यस्तता नहीं मालूम। अरे, सोमेश बाबू कहाँ गये। अभी तो उनकी आवाज आई थी।

उषा : ऊपर गये हैं । कह गये हैं, मुझे जितनी बाते करनी है, रात-भर में कर लूँ, फिर सुबह उनकी बारी होगी ।

कौशल : (हँसी) जीजाजी का बचपना अभी तक नहीं गया । वैसे मुझे गहरी

नींद आ रही है, तुम मेरे सोने की व्यवस्था करो ।

उषा : अरे, आप खाना नहीं खायेंगे ?

कौशल : शांता ने दिल्ली में जो खाना बनाकर दिया था, उसे ही खाते-खाते तो आ रहा हूँ । अरे हाँ, मेरी व्यवस्था उस कमरे में कर दो, जहाँ मैं खर्राटे ले सकूँ । तुम्हारी भाभी यही कहती है—मैं पहरेदार होता, तो ज्यादा अच्छा होता (हँसी।)

उषा : आप यहीं सो जाइए । किसी चीज की जरूरत हो, तो आवाज दे दीजियेगा ।

क्रांति : ओ. के। शुभ रात्रि ।

[फाटक लगने, सिटकिनी चढ़ाने और सीढ़ियों पर पदचाप के बाद कौशल की जोरदार खर्राटे ।]

(पदचाप।)

सोमेश : बस शुरू हो गयी जंगल में शेर की दहाड़ । अब जगते रहो प्राण रक्षा में, गीदड़-सियार की तरह । यह एक दिन की बात तो नहीं रह गई है। आज साला, कल साली, परसों सादू, नरसों ससुर । हुँह ।

(खर्राटे की ध्वनि होती रहती है ।)

[दृश्यांतर।]

[चिड़ियों की चहचहाहट; पुनः व्यक्ति का कोलाहल; टमटम-रिक्शा आदि की ध्वनि।]

कौशल : (बेचैनी में) अरे उषा, तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं, इतना दिन निकल आया, साढ़े नौ में तो मेरी बस है और नौ बजने को हैं । उफ्।

उषा : मैंने सोचा, रात की थकान है, जरा आराम मिल जायेगा, तो स्वस्थ हो जाइयेगा ।

सोमेश : (सीढ़ियाँ से उतरने की आवाज। हँसते-हँसते) ठीक ही आप की बहन कह रही है। मैं तो कहूँगा, आज रात भी ठहर जाइए, तो सारी थकान ही जाती रहेगी । अरे अपना ही तो घर है, आखिर अपनों का घर होता है काहे को।

कौशल : ओह नहीं, सोमेश बाबू, गाड़ी पकड़ना बहुत जरूरी है। कल भर घर में रहूँगा और फिर परसों नौकरी पर वापस ।

सोमेश : अरे, यह भी कोई बात हुई, घर पर रहेंगे और यहाँ नहीं । यह भी तो आप का ही घर है । आपलोग ठहरते हैं, तो मेरा भाग्य ही खुल

जाता है ।

कौशल : अच्छा, कोशिश करूँगा कि वापस घर से लौटते वक्त एक रात यहीं ठहर जाऊँ । सुबह वापसी की गाड़ी पकड़ लूँगा, लेकिन अभी तो भागता हूँ । बाप रे, गाड़ी का समय.....मेरी अटैची कहाँ है, अच्छा उषा, कल या परसों आऊँगा । (प्रस्थान के जूते की ध्वनि।)

सोमेश : (जोर से आवाज) अरे कोशिश नहीं, अवश्य आइयेगा, आपके इन्तजार में रात भर दरवाजा खुला रहेगा, और मैं द्वारपाल की तरह आपका इन्तजार करता रहूँगा, हाँ ।

[दृश्यांतर।]

[टहलकदमी की ध्वनि।]

उषा : (व्यंग्यात्मक स्वर में) अब आप भी शूट-बूट पहनकर तैयार हैं ? आपकी भी गाड़ी छूट रही है क्या ? सुनिए, खाना तैयार कर दिया है, खाते जाइए ।

सोमेश : (व्यंग्य) खाना तैयार कर लिया और भाई जी बिना खाए चले गए।

उषा : जैसे लगता है, इस घर में रोज-रोज मेरे भाई के लिए ही खाना बनाया जाता रहा है और इस घर के लोग तो हवा पर जीते हैं ।

सोमेश : जी नहीं रहा हूँ, तो रात भर रहा कैसे ?

उषा : वह मैं भी जानती हूँ, आप कैसे रहते हैं ।

सोमेश : (गुस्से में) क्या जानती हो, (और तेज) क्या जानती हो । क्या मैं होटल से खा कर आता हूँ ?

उषा : और नहीं तो क्या, कोई तीन-तीन दिन भूखे रहकर कविता और उपन्यास नहीं लिख सकता। 'उपाध्याय जी, सिंह जी, महतो जी, से काव्य शैली पर गरमागरम बहस नहीं हो सकती ।

सोमेश : तो, अब समझा कि तुम मुझे खाने के लिए जिद क्यों नहीं करती। (रुक कर) तो, तुम मुझे अपनी तरह समझती हो ?

उषा : (थोड़ा तीखा स्वर) अपनी तरह ? अपनी तरह क्या ?

सोमेश : हाँ, हाँ, तुम्हारी तरह, मैं नहीं जानता हूँ क्या । घर में खाना नहीं खाती, मुझे दिखाती हो कि मैं खाना नहीं खाती और ऑफिस में जाते ही पावभाजी, मशालढोसा का प्लेट मंगवाया जाता है। (अन्तराल) कोई भूखे रहकर ऑफिस की मोटी-मोटी फाइलें नहीं निपटा ले सकता ।

उषा : (रुआँसी स्वर में) तो, आप क्या चाहते हैं, मैं भूखे रहकर मर जाऊँ।

सोमेश : तो, तुम क्या चाहती हो कि मैं भूखे रहकर मर जाऊँ ?

उषा : मैं क्यों चाहूँगी, आप चाहते हैं ।

सोमेश : मैं क्यों चाहूँगा, तुम चाहती हो ।

उषा : (बिलखती हुई) मैं चाहती हूँ ! मैं क्या डायन हूँ । डाकिन हूँ । (रोने लगती है।)

सोमेश : देखो, यह नौटंकी बंद करो । लोग क्या कहेंगे; यही न कहेंगे कि पत्रकार, साहित्यकार होकर अपनी औरत को रुलाता है ।

उषा : पर आपको इसकी फिक्र ही कहाँ है ।(कपसना तेज हो जाता है।)

सोमेश : बस हो गया न फिर महाभारत का वही युद्धपर्व । तो, करो बैठे-बैठे सावित्री-विलाप का अभ्यास। मैं चला, मेरी किस्मत में ही बेघर बने रहना लिखा है ।

[दूर होती पदचाप : समापन संगीत।]

आकाशदीप

[कुछ क्षणों के लिए तेज समुद्री लहरों के उठने, गिरने, टकराने की ध्वनि के बाद लहरों का मद्धिम शोर सक्रिय।]

चंपा : (फुसफुसाहट का स्वर।) बंदी !

बुद्धगुप्त : (उपेक्षा) क्या है? सोने दो!

चंपा : मुक्त होना चाहते हो ?

बुद्धगुप्त : अभी नहीं, नींद खुलने पर। चुप रहो।

चंपा : फिर अवसर ना मिलेगा।

बुद्धगुप्त : बहुत शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।

चंपा : आँधी की संभावना है, यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।

बुद्धगुप्त : तो, क्या तुम बन्दी हो?

चंपा : (फुसफुसाहट) हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।

बुद्धगुप्त : (फुसफसाहट) अस्त्र मिलेगा?

चंपा : (फुसफुसाहट) मिल जायेगा। पोत में बंधे रस्से को काट सकोगे ?

बुद्धगुप्त : (दृढ़ स्वर) हाँ।

[लहरों का एकबार पुनः तीव्र हो उठना।]

बुद्धगुप्त : लो, मैं तुम्हें भी बंधनों से मुक्त करता हूँ।

[रस्सा काटने के ध्वनि।]

बुद्धगुप्त : (आश्चर्य) बंदी, तुम स्त्री हो !

चंपा : क्यों, स्त्री होना कोई पाप है?

बुद्धगुप्त : नहीं-नहीं, मेरे पूछने का अर्थ यह कदापि नहीं था, पर तुम्हारा नाम क्या है ?

चंपा : चंपा।

बुद्धगुप्त : लो, तुम्हारे सारे बंधन मुक्त हो गए। अस्त्र कहाँ है ?

चंपा : अभी देती हूँ। वह देख रहे हो न, उस मतवाले नाविक के शरीर से बंधा अस्त्र। मैं लुढ़कती हुई वहाँ पहुँची नहीं कि कृपाण लिए आई। पल भर रुको।

[समुद्री लहरों का शोर क्षण भर के लिए तीव्र हो उठता है।]

चंपा : यह लो अस्त्र।

बुद्धगुप्त : अब ठीक है।

[समुद्री शोर तीव्र से तीव्रतर होता है।]

आवाज 1 : (तेज स्वर) आँधी।

चंपा : पोत के पथ-प्रदर्शक की आवाज है।

[विपत्ति सूचक घंटी-नाद, कोलाहल, भाग-दौड़ की आवाजें।]

बुद्धगुप्त : घबड़ाने की बात नहीं है, चंपा। मैं लुढ़कते हुए अभी पोत के उस रस्से के पास पहुँचता हूँ और उसे काट कर नाव को स्वतंत्र करता हूँ।

[लहरों का तीव्रतर शोर।]

बुद्धगुप्त : (हर्ष) नाव स्वतंत्र हो गई, चंपा। हाँ, नाव स्वतंत्र हो गई है और पोत का नायक, अब मेरे अधीन है! मेरे अधीन!

नायक : (गुस्से में) बुद्धगुप्त, तुमको मुक्त किसने किया?

बुद्धगुप्त : नायक, देखते हो इस कृपाण को ! इस कृपाण ने।

नायक : तो, तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।

बुद्धगुप्त : किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र तो अब अतल जल में होगा, नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।

नायक : (घृणा) तुम जलदस्यु, बुद्धगुप्त ! कदापि नहीं। मैं अभी तुम्हें...।

बुद्धगुप्त : (मुस्कुराहट के साथ) कृपाण ढूँढ रहे हो, नायक? वह तो चंपा ने पहले ही उस पर अधिकार कर लिया है।

नायक : (बौखलाहट) क्या!

बुद्धगुप्त : तो, तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए तैयार हो जाओ। जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा। चंपा, इसे कृपाण दे दो।

चंपा : यह लो।

[कृपाणों के टकराने की ध्वनि। कुछ क्षणों के बाद कृपाण के गिरने की ध्वनि।]

बुद्धगुप्त : अब कहो, नायक, तुम मेरे पैरों के नीचे हो और मेरे हाथ में यह विजयी कृपाण! बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं?

नायक : (गिड़गिड़ाहट) मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात ना करूँगा।

बुद्धगुप्त : तो नायक, मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। अब से तुम मेरे आदेश पर चलोगे।

नायक : ऐसा ही होगा। मुझे आदेश दें कि मैं स्वयं पतवार संभालूँ। यहाँ एक जलमग्न शैल खण्ड है। सावधान न रहने पर टकराने का भय है। फिर अभी हमलोग बाली द्वीप से बहुत दूर हैं, अनुकूल पवन रहा, तो दो दिन में पहुँच जायेंगे। नाविको, डाँढ़ लगाओ !

[लहरों पर डाँढ़ चलाने की ध्वनि : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[दूर कहीं मल्लाह गीत,]

चंपा : (भावुकता) आह, वह एक क्षण जीवन की शिला पर स्वर्णिम लेख की तरह अमर हो गया है; जब उस बंदी युवक ने हर्षातिरेक में मुझे गले लगा लिया था। न जाने कैसे अनजाने स्पर्श की पुलक से मैं संपूर्ण रूप से सिहर उठी थी। (अन्तराल) आह, उसके आलिंगन में कितनी कोमलता थी। उस एक क्षण में ही तो मेरा शरीर न जाने किस सौरभ, राग-संगीत, सुकुमारता और सौन्दर्य से भर गया था।

[सितार का संगीत।]

बुद्धगुप्त : क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम किस चिन्ता में निमग्न हो ?

चंपा : (चौंकती-सी) ओह, तुम! आओ बैठो !

बुद्धगुप्त : ठीक है, वैसे मैं यह जानने के लिए आया हूँ कि इनलोगों ने तुम्हें बंदी क्यों बनाया था ?

चंपा : नाविक मणिभद्र की पाप-वासना ने।

बुद्धगुप्त : तुम्हारा घर कहाँ है।

चंपा : जाह्नवी गंगा के तट पर । चंपा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। (अतीत स्मरण) पिता जी, इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता के देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर

ही रहने लगी। आठ बरस से नाव ही मेरा घर है। (सितार के तरंगायित स्वर) तुम्हारे आक्रमण के समय, मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जलसमाधि ली (सागर-स्वर तेज।)

बुद्धगुप्त : ओह, कितनी करुण कथा है।

चंपा : एक मास हुआ, मैं इस नभ के नीचे, सागर के ऊपर एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ, अनाथ हूँ (करुण संगीत) और मणिभद्र ने एक दिन मुझसे घृणित प्रस्ताव किया।

बुद्धगुप्त : तो, फिर तुमने....

चंपा : (रोष) मैंने उसे गालियाँ सुनाई। फिर उसी दिन से मैं बन्दी बना दी गई। (करुण संगीत) लेकिन मैंने तो तुम्हारा परिचय जाना ही नहीं।

बुद्धगुप्त : मैं भी ताम्रलिपी का एक क्षत्रिय हूँ, चंपा। परंतु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ। (अन्तराल) खैर छोड़ो, अब तुम क्या करोगी ?

चंपा : मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। जहाँ ले जाए। (करुण संगीत प्रभाव)

[दृश्यांतर।]

[तीव्र सागर स्वर : फेड आउट।]

बुद्धगुप्त : ओफ, कैसी थी, निस्सीम प्रदेश में चंपा की वे निरुद्देश्य आँखे, जिनमें किसी आकांक्षा की डोर नहीं थी। बस उन धवल दृष्टियों में बालकों-सा विश्वास भरा था, जिसे देख कर (उसाँसे) जिसे देख कर मुझ जैसा हत्या व्यवसायी दस्यु भी काँप गया था। (अन्तराल) आह, मेरे मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा, यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी है। (सागर लहरियाँ : फेड आउट।)

चंपा के वे खुले केश-गुच्छ उसकी पीठ पर किस तरह बिखरे हुए थे। मैं देख रहा था, अपनी ही महिमा में अलौकिक उस करुण वरुण बालिका को (उसांसे) आह, वर्षों से व्याकुल यह मेरा मन उसे संपूर्णता में स्वीकार के लिए किस तरह विकल हो उठा है।

[सितार संगीत : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[सागर लहरियाँ। दूरागत मल्लाह गीत।]

चंपा : वर्ष पर वर्ष ! और देखते-ही-देखते पाँच वर्ष बीत गये, जया।

जया : सो तो है। पर रानी, छोड़िए यह काल-गणना। ऊपर देखिए (सितार संगीत की एक लहर।) शरत के धवल नक्षत्र नील गगन में कैसे झलमला रहे हैं; जैसे, चन्द्र की उज्जवल विजय पर अन्तरिक्ष की शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया हो। (सितार के संगीत की पुनः एक लहर।)

चंपा : (हर्ष) सचमुच। और शारदीय अंतरिक्ष के नीचे चंपा का हमारा यह वैभवपूर्ण महल। ठहरो जया, मैं अभ्रक की इस मंजूषा में दीप भर कर जरा डोरी तो खींच दूँ। (सितार के संगीत की एक लहर) देखो-देखो, जया, यह दीपाधार किस तरह ऊपर चढ़ने लगा है। (आह्लादक संगीत) मेरी तो यही कामना है कि मेरा यह आकाशदीप नक्षत्रों से हिल-मिल जाए किन्तु मैं जानती हूँ, ऐसा होना असंभव है।

[सागर का ध्वनि-प्रभाव।]

जया : और रानी जी, उधर तो देखिए (आह्लाद) सामने जलराशि का यह रजत शृंगार और दूर-दूर से धीवरों की वंशी की यह आती हुई आवाज,

[लहरियों के ध्वनि-प्रभाव के साथ-साथ बाँसुरी का संगीत।]

चंपा : सुन रही हूँ, जया। देख भी रही हूँ और यह भी देख रही हूँ कि तरंग शंकुल जलराशि में मेरे कंदील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त हुआ जा रहा है। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काट रहा है। (करुण संगीत की एक लहर) जया, तुम मुझे रानी मत कहा करो!

जया : लेकिन यह तो महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा है।

चंपा : महानाविक की आज्ञा है। लेकिन जो अपने अधूरे अस्तित्व को जी रही है, वह रानी कैसे? अपनी संपूर्णता पाने की कोशिश करते ये बिखरे प्रतिबिंव, क्या मेरे जीवन की यही गति नहीं है? काश, तुम्हारा महानाविक यह समझ पाता, जया। (उसाँस।)

जया : आज्ञा हो, रानी।

चंपा : महानाविक कब तक आवेंगे। जरा बाहर जाकर पूछो तो।

चंपा : अभी आई, रानी।

[आवर्ती संगीत-प्रभाव।]

चंपा : (भावकुता से) बुद्धगुप्त, जिस दिन अनजाने में ही तुमने मुझे अपने गले से लगा लिया था, उसी दिन से, हाँ उसी दिन से ही यह रह-रह

कर मुझे क्या हो जाता है ! हृदय में यह कैसी गुदगुदी उठती रहती है ! यह मैं बेसुध क्यों बनी रहती हूँ।

[आवर्ती सितार-संगीत।]

बुद्धगुप्त : चंपे, मैं महानाविक आ सकता हूँ।

चंपा : (हर्ष) आओ बुद्धगुप्त, मैं तुम्हारा ही इन्तजार कर रही थी।

बुद्धगुप्त : लेकिन तुम बावली हो गई हो क्या? यहाँ बैठी हुई अब तक दीप जला रही हो। तुम्हें यह काम करना है ?

चंपा : नहीं तो क्या, निधिशामी अनन्त की प्रसन्नता के लिए मैं दासियों से आकाशदीप जलवाऊँ ?

बुद्धगुप्त : (हल्की हँसी) हँसी आती है। आखिर यह दीप जला कर किसको पथ दिखलाना चाहती हो तुम ? उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है ?

चंपा : (आत्मलीनता) हाँ, वह भी कभी भटकते है, भूलते हैं। नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?

बुद्धगुप्त : (गंभीर) तो क्या बुरा हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चंपा रानी?

चंपा : कुछ भी तो नहीं (उसाँस) मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा, सुमात्रा के वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में हैं, महानाविक।

बुद्धगुप्त : वह तो है, अधीश्वरी।

चंपा : (पूर्व स्वर में) परंतु मुझे तो उन दिनों की स्मृति ही सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चंपा के उपकूल में द्रव्य लादकर सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हमलोग की नाव आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी।

बुद्धगुप्त : मुझे एकदम याद है, चंपा देवी।

चंपा : बुद्धगुप्त, उस विजन अनन्त में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे; तब हम-तुम परिश्रम से थक कर पालों में, शरीर लपेट कर, एक दूसरे का मुँह क्यों देखते थे। आह! नक्षत्रों की वह मधुर छाया।

बुद्धगुप्त : लेकिन अब हमलोग उससे भी अच्छे ढंग से विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणमयी हो, मेरी सर्वस्व हो।

चंपा : (हल्का रोष) तुम झूठ कह रहे हो, महानाविक। नहीं, नहीं, तुमने दस्युवृति तो छोड़ी दी, परंतु तुम्हारा हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण

और ज्वलनशील है।

बुद्धगुप्त : (आहत स्वर) ऐसा क्यों कह रही हो, हृदयेश्वरी?

चंपा : क्योंकि तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो। तुम्हें याद है कि उस प्रचण्ड आँधी में हमलोग प्रकाश की एक किरण के लिए कितने व्याकुल बने हुए थे।

बुद्धगुप्त : लेकिन...।

चंपा : (स्मृति स्वर) मुझे स्मरण है, तब मैं छोटी थी। मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे और मेरी माँ, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में जलाकर, उसे भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे बाँध देती थी और प्रार्थना करती - भगवान! मेरे पथभ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।

बुद्धगुप्त : वह अपने स्वामी के प्रति काफी अनुरक्त थी।

चंपा : हाँ! और मेरे पिता बरसों बीतने पर घर लौटते, तो कहते, ''साध्वी, तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक संकटों से मेरी रक्षा की है।'' मेरी माँ गदगद हो जाती। ओह, मेरी माँ।

बुद्धगुप्त : (व्यंग्य स्वर) सो तो ठीक है, लेकिन तुम्हारा यह आकाशदीप।

चंपा : (तिलमिलाहट) महानाविक, मेरा आकाशदीप उसी की पुण्य स्मृति है (उग्र स्वर) मेरे पिता, मेरे वीर पिता की । मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु, हट जाओ!

बुद्धगुप्त : चम्पेश्वरी, यह अचानक तुम्हारा मुख क्रोध से भीषण हो कर रंग बदलने लगा है। मैंने तुम्हारा यह रूप कभी नहीं देखा था (ठठाकर हँसता है) चंपा, तुम अस्वस्थ हो। जाओ, सो रहो। मैं चलता हूँ। (पद ध्वनि : फेड आउट।)

चंपा : (करुण स्वर) चले गए निष्ठुर। मेरे पिता के हत्यारे, अब मेरे प्राणों के भी हत्यारे हुए जाते हो। आह, मेरा यह मन कि मैं भी माँ की तरह अपने इस महानाविक के लिए आकाशदीप जला कर ईश्वर से प्रार्थना करूँ। (अन्तराल) ओह निष्ठुर, क्या तुम्हें हृदय की भाषा का कुछ ज्ञान नहीं या कि तुम सिर्फ एक दस्यु, भीषण भय के सर्जक (बिलखना।)

[दृश्यांतर।]

[लहरियों का स्वर-प्रभाव।]

जया : रानी, हम समुद्र के तट पर आ चुके हैं।

चंपा : मैं जान रही हूँ, जया, पर उधर तो देखो, निर्जन समुद्र के उपकूल से टकरा कर लहरें किस तरह बिखर जाती हैं और पश्चिम का वह पथिक कितना थक गया है। उसका मुख तक पीला पड़ गया है।

जया : पर, प्रकाश की इन मलिन किरणों से विरक्त अपनी शांत गंभीर हलचल में यह जलनिधि अभी विचार में निमग्न है। है न ?

चंपा : बिल्कुल ठीक कहती हो, जया।

जया : रानी, लीजिए, आप की यह छोटी नौका तैयार है।

चंपा : चलो, आज तुम ही नाविक बनो। मैं समुद्र के इस उदास वातावरण में मुग्ध-सी अपने को मिश्रित कर देना चाहती हूँ।

[पतवार-लहरों का ध्वनि-प्रभाव।]

चंपा : (मुग्ध भाव) इतना जल। इतनी शीतलता। हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं तो। जैसे बेला से चोट खा कर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ या जलते हुए उस स्वर्ण गोलक के सदृश्य अनन्त जल में डूब कर बुझ जाऊँ।

जया : रानी!

चंपा : क्या है, जया?

जया : पीड़ा और ज्वलन से आरक्त सूर्य धीरे-धीरे सिन्धु में चौथाई, फिर आधा और फिर संपूर्ण विलीन हो गया है।

[तीव्र लहरियों के स्वर।]

[लहरों पर चप्पू की आवाजें : फेड इन।]

बुद्धगुप्त : चम्पे, इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, तो।

चंपा : (शांत, प्रसन्न भाव) तो क्या होता !

बुद्धगुप्त : ऐसा मत कहो। यह लो मेरा हाथ, इसी के सहारे बजरे पर चढ़ जाओ (अन्तराल) हाँ, यहाँ बैठो, एकदम मेरे पास। (कुछ क्षणों के लिए लहरों का ध्वनि-प्रभाव।)

बुद्धगुप्त : क्या सोचने लगी ?

चंपा : यही कि नाव जलमग्न हो जाती, तो अच्छा था। जल में बन्दी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।

बुद्धगुप्त : आह, चम्पा, तुम कितनी निर्दयी हो। बुद्धगुप्त को आज्ञा दे कर देखो

तो, वह क्या नहीं कर सकता है। नई प्रजा खोज सकता है, नए राज्य बसा सकता है। उसकी परीक्षा लेकर देखो तो।

चंपा : महानाविक !

बुद्धगुप्त : हाँ, हाँ, कहो, चंपा। क्या इस कृपाण से अपना हृदय पिंड निकाल अपने ही हाथों, इसे अतल जल में विसर्जित कर दूँ।

चंपा : महानाविक !

बुद्धगुप्त : हाँ-हाँ, मैं महानाविक। जिसके नाम से बाली, जावा और चंपा का आकाश गूँजता है, पवन थर्राता है, वही घुटनों के बल चंपा देवी के सामने छलछलाई आँखों से बैठा है और.....। (दीर्घ साँसे।)

चंपा : (विमुग्धावस्था) महानाविक !

बुद्धगुप्त : कहो चम्पे, कहो-कहो।

चंपा : उधर देखो, उस शैलमाला की चोटी की हरियाली में प्रकृति की सहृदय कल्पना, नील पिंगल संध्या, विश्राम की शांत छाया, स्वप्न लोक का निर्माण करने लगी है। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहुक स्फूट हो चला है; जैसे, मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो उठा हो। सारी सृष्टि ही जैसे नीले कमलों से भर गई हो और उस सौरभ से मेरा मन पागल हुआ जा रहा है। (विभोर होने की उसाँस) महानाविक, आओ, मुझे अपने आलिंगन में लो !

बुद्धगुप्त : (विमुग्ध शिथिल स्वर) चम्पेश्वरी !

चंपा : (विमुग्ध शिथिल स्वर) बुद्धगुप्त !

बुद्धगुप्त : (पूर्व स्वर) हृदयेश्वरी !

चंपा : (पूर्व स्वर) मेरे महानाविक !

बुद्धगुप्त : चम्पे, जीवन की इस पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाशगृह बनवाऊँगा। यहीं, उस पहाड़ी पर। संभव है मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय।

[सितार के तरंगायित स्वर।]

[दृश्यांतर।]

[बांसुरी, ढोल, पायलों का ध्वनि-प्रभाव, जो संवादों के बीच अवरोही, आरोही गति में सक्रिय।]

चंपा : (अत्यधिक हर्ष) जया, इस दीपस्तंभ को पा कर मैं कितनी खुश हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ। जब मैं इस दीपस्तंभ की ऊपरी खिड़की से नीचे

महासमुद्र-सी लहराती जलराशि को देखती हूँ, तो मन में कैसी-कैसी भावनाएँ आन्दोलित हो उठती हैं, क्या बताऊँ। खैर छोड़ो, यह तो बताओ, यह क्या है? तुम इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाई ?

जया : (हर्ष से) आज रानी का ब्याह है न? और फिर कल चंपा रानी अपने पति का देश चली जायेगी, ताम्रलिप्ति। अच्छा अब मैं चली, सभी व्यवस्थाओं को पूर्णता देनी है। (पदचाप। पदचाप समाप्त होते ही जया के वाक्य बार-बार प्रतिध्वनित होते हैं।)

चंपा : नहीं, यह कभी नहीं हो सकता है। मुझे अपने पिता और माता की भूमि से कोई अलग नहीं कर सकता। यहाँ उनकी स्मृतियाँ हैं, जिन्हें मैं छोड़ ही नहीं सकती, कभी नहीं छोड़ सकती।

[दृश्यांतर।]

चंपा : बुद्धगुप्त, जया ने जो कुछ भी सुनाया, क्या वह सच है ?

बुद्धगुप्त : यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह भी सच हो सकता है, चंपा। कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती से दबाए हूँ।

चंपा : (करुणापूर्ण आक्रोश) चुप रहो, महानाविक। क्या मुझे निःसहाय और कंगाल जान कर तुम यह प्रतिशोध लेना चाह रहे हो? क्या तुम्हारे सामने मैंने अपनी कंचुकी से प्रतिशोध के उस कटार को जलराशि में फेंक डाला था, इसलिए?

बुद्धगुप्त : (दीनता) नहीं, चम्पे नहीं। मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ। तुम्हारे पिता एक दूसरे दस्यू के अस्त्र से मरे।

चम्पा : (कातर स्वर) आह, यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय। आह, तुम निष्ठुरता में भी कितने महान होते।

बुद्धगुप्त : (दीनता) मैं तुम्हारे पाँव पकड़ कर कहता हूँ, मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं। चंपे, हमलोग जन्मभूमि से कितनी दूर, इन निरीह प्राणियों से, शची और इन्द्र की तरह, पूजित हैं, पर न जाने कौन-सा अभिशाप हमलोगों को अभी तक अलग किए है। (उसाँस) स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश। वह महिमा की प्रतिमा। मुझे वह स्मृति नित्य आमंत्रित करती है। (विह्वलता) जानती हो, पर मैं क्यों नहीं जाता? (उसाँस) इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ। मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चँद्रकांत मणि

की तरह द्रवित हुआ। (सितार के तरंगाचित स्वर ।)

चंपा : (डूबे स्वर) सच कह रहे हो, महानाविक?

बुद्धगुप्त : एकदम सच! चंपा, मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को भी नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं इस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है, चंपे।

चंपा : (डूबे स्वर में) बुद्धगुप्त !

बुद्धगुप्त : तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के सामान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निबिड़ तम में मुस्काने लगी। पशु-बल और धन-उपासक के मन में किसी शांत और कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी। (उसाँस) आह, पर मैं हँस न सका।

चंपा : क्या तुम एकदम सच-सच कह रहे हो, बुद्धगुप्त ?

बुद्धगुप्त : एकदम सच-सच। (अन्तराल) चंपे।

चंपा : क्या है?

बुद्धगुप्त : चलोगी न चंपा, अपना देश? पोतवाहिनी पर असंख्य धन-राशि लाद कर राजधानी की जन्मभूमि के अंक में। आज हमारा परिणय हो, कल ही हमलोग जन्मभूमि के लिए प्रस्थान करें (आत्मगर्व) महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा तो सिंधु की लहरें भी मानती हैं। वे स्वयं पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान जन्मभूमि में पहुँचा देंगी। कहाँ चंपा, चलोगी न?

चंपा : (झटके की चैतन्यावस्था) नहीं बुद्धगुप्त, नहीं। (स्थिर होकर) बुद्धगुप्त, मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलकर मेरे लिए शून्य है। (करुण संगीत की एक लहर।)

बुद्धगुप्त : यह क्या कह रही हो, हृदयेश्वरी?

चंपा : मैं ठीक कह रही हूँ। प्रिय नाविक, तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।

बुद्धगुप्त : (विकलता) तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा। यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा, इसमें संदेह है। (अन्तराल) आह, न जाने किन लहरों से मेरा विनाश हो जाए... पर मुझे जाना

ही पड़ेगा, जाना ही पड़ेगा। आह, मेरी मातृभूमि। दार्शनिकों का देश, मेरी जन्मभूमि! मुझे जाना ही होगा। मैं जाता हूँ, चंपे! (लहरों पर चप्पुओं की आवाजें।)

[करुण संगीत-प्रभाव।]

[चम्पा की सिसकियाँ और लहरियाँ का शोर।]

जया : चुप भी हो जाओ, रानी।

चंपा : (गीले स्वर में) अब, रानी मत कहो, जया। अब किसकी आज्ञा से तुम मुझे रानी कहोगी? वह देखो (लहर-स्वर तीव्रतम, पुनः क्षीण) सामुद्रिक नावों की वह एक श्रेणी, चम्पा के उपकूल को छोड़ कर पश्चिम-उत्तर की ओर चली जा रही है, वह महानाविक बुद्धगुप्त की है। (कपसना : समुद्री लहरों के तीव्र स्वर।)

जया : तुम्हें महानाविक की बात मान लेनी थी रानी। अब आप यहाँ अकेली रह कर क्या करेंगी? इस द्वीप में?

चंपा : (सामान्य होकर) पहले विचार था कि कभी-कभी इसी दीप स्तम्भ से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे इसी में जलना होगा; जैसे आकशदीप।

[रुदन स्वर। लहरों का शोर तीव्र होता है और करुण संगीत में समाप्त।]

अंधेरी घाटी की सुरंग

[आरम्भिक संगीत।]

[दरवाजा खुलने की आवाज।]

शान्ति : (विचलित स्वर में) अरे, आपने अभी तक चाय भी नहीं ली, यह तो एकदम ठंडी हो गई होगी । लिखने-पढ़ने के क्रम में आप को जैसे कुछ का भी ख्याल नहीं रहता। अच्छा, कोई बात नहीं, मैं फिर से बना देती हूँ ।

कौशलेन्द्र : (शांत स्वर में) नहीं शान्ति, रहने भी दो । इसे ही पी लूँगा, चाय का आनन्द ही तो लेना है । गरम और ठंडा से क्या होता है (किताबें बंद करने की आवाज) अखिलेश दिल्ली कब लौट रहा है ?

शान्ति : (आश्चर्य से) कितनी बार आप पूछेंगे । उसने बता तो दिया है, इक्कीस को निकलेगा ।

कौशलेन्द्र : हाँ, उसने बताया तो था । इक्कीस को ही निकलेगा । किस गाड़ी से निकलेगा ।

शान्ति : (स्वर में झुंझलाहट) आपको भी बताया था कि विक्रमशिला से वह निकल रहा है ।

कौशलेन्द्र : ठीक है, रिजर्वेशन करवा तो लिया है ?

शान्ति : (झुंझलाहट) यह आप कितनी बार मुझसे पूछेंगे और मैं कितनी बार जवाब दूँगी कि उसने रिजर्वेशन पाँच रोज पहले ही करवा लिया है।

कौशलेन्द्र : (चाय सुड़कने की आवाज) अरे, तो इसमें झुंझलाने की क्या बात है। तुमने अपनी आँखों से रिजर्वेशन का कागज देख तो लिया है न?

शान्ति : आप भी अजीब बात करते हैं । अखिलेश हम लोगों से झूठ बोलेगा?

कौशलेन्द्र : (प्याला रखने की आवाज) मैं यह नहीं कह रहा हूँ, लेकिन झूठ तो मैं भी अपने पिता से बोलता था, मेरे पिता भी अपने पिता से बोलते

रहे होंगे ।

शान्ति : लेकिन यह आप जान लीजिए कि अखिलेश आप की तरह नहीं है।

कौशलेन्द्र : (पुनः प्याला उठाने की आवाज) मैं इससे इनकार नहीं करता हूँ, लेकिन शान्ति, अभी ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, तुम्हारे लाडले को राँची जाना था। रात का सफर। कहा था, रिजर्वेशन करवा लूँगा और आखरी दिन तक नहीं करवाया । कहीं कोने में दुबक कर बैठ गया होगा। और तुम्हें टेलीफोन पर बता दिया कि ऊपर का बर्थ खाली मिल गया। सो के राँची गया ।

शान्ति : तो, आप समझते हैं कि इसने झूठ ही कहा था मुझसे ।

कौशलेन्द्र : (चुस्की) यह कहकर मैं तुम्हारे जी को दुखाना नहीं चाहता, शान्ति; लेकिन जरूरत से ज्यादा किसी पर भरोसा करना दुख का कारण भी होता है ।

शान्ति : (झुंझलाहट) ठीक है, अब बातें बढ़ाने की जरूरत नहीं । अभी अखिलेश बाजार गया है; आयेगा, तो रिजर्वेशन की टिकिट भी देख लूँगी । ठीक है । (अन्तराल) लिखना-पढ़ना हो जाय, तो कहियेगा, खाना लगा दूँगी । खाना तैयार है ।

कौशलेन्द्र : तो, फिर पहले खाना ही खा लेता हूँ । बाद में निश्चिंत होकर लिखूँगा । रेडियो के लिए एक नाटक लिखना था । सोच रहा था, किस विषय पर लिखूँ ।

शान्ति : विषय ढूँढने की जरूरत क्या है। घर की बात सबको सुनाते ही हैं अब इस पर नाटक भी लिखकर दुनिया भर में फैला दीजिए न ।

कौशलेन्द्र : (चुटकी बजाते हुए हर्ष से) अरे, तुमने तो मेरी समस्या ही हल कर दी। इसीलिए तो किसी महान लेखक ने कहा है कि पुरुष एक प्रश्न है, और नारी उसका उत्तर ।

शान्ति : (नम्र स्वर में) बस-बस। रखिए यह सब अपना साहित्य । इससे आप मुझे फुलाकर कुप्पा नहीं बना सकते ।

[फाटक खोलने-भिड़काने की आवाजें।]

[दृश्यांतर।]

[बर्त्तन रखने की आवाजें।]

कौशलेन्द्र : अरे बाप रे, इतने प्रकार के व्यंजन (गंभीर होते हुए) लेकिन मैं कहूँ, शान्ति; यह सब व्यर्थ है । जब एक सब्जी से काम चल जाता हो,

तो ये चार-चार सब्जियों की क्या जरूरत है । श्रम और अर्थ दोनों की बर्बादी ।

शान्ति : अब खाने के समय में भी मेरा दिमाग मत खाइए । अभाव रहे, तो एक सब्जी भी मंहगी है । और अब कौन-सी तीन-तीन बेटियाँ व्याहना है, जो बैंक में जमा कर के सरकार को मोटा होने दूँ । एक बेटी है, आराम से सब निभ जायेगा—नहीं तो पेंशन के पैसे से ही।

कौशलेन्द्र : ओह, शांति, तुम मेरी बात को समझने की कोशिश नहीं करती हो। मेरा कहने का मतलब है कि अगर तुम एक सब्जी को प्लेट में रखो, तो उसके स्वाद को ठीक से अन्त तक लिया जा सकता है, लेकिन पाँच रखो, तो किसी का स्वाद जी भर के नहीं ले सकता ।

शांति : (झुंझलाहट) क्यों, क्या पाँच सब्जी के मिलने से सबके स्वाद खत्म हो जाते हैं ।

कौशलेन्द्र : सो बात नहीं है, शांति; सो बात नहीं है। मिली-जुली सरकार की अस्थिरता और एक दल की सरकार की स्थिरता का सवाल है । मिली-जुली सब्जी किसी एक सब्जी के स्वाद को देर तक रहने ही नहीं दे सकती ।

[द्वार पर दस्तक।]

शांति : आप तो व्यर्थ ही कवि, कथाकार हुए, नेता होते तो ठीक । खाने वक्त भी राजनीति की बातें (जूते की आवाज) लगता है, अखिलेश लौट आया है । खाना खाइए। कुछ जरूरत पड़े, तो आवाज दे दीजिएगा। मैं जाती हूँ ।

कौशलेन्द्र : राजनीति की बात करती हो, राजनीति से काम न लूँ, तो तुम एक शाम का खाना भी ठीक से न दो ।

[द्वार खुलने की आवाज।]

शांति : (हुलास में) आ गये, बेटा । फुलपैंट मिल गया ?

अखिलेश : हाँ माँ, लेकिन दाम दुगुना देना पड़ गया । दूसरी किसी दुकान में ऐसा मिलता भी नहीं, क्या करता ।

शांति : (हुलास में ही) अरे, तुमने एकदम ठीक किया, बेटा, एकदम ठीक ।

अखिलेश : पहले इसे अटैची में रख लूँ, तब.....

शांति : (उत्साह में) अरे, अटैची में अभी मत रखो । पिता जी को दिखा लो। वैसे तुम्हारी पसन्द की कौन सराहना नहीं करता है ।

कौशलेन्द्र : (मुँह में कौर होने का कारण भारी स्वर में) मुझे नहीं देखना । रख

लेने दो । फुलपैंट ही तो है, निजाम का दोशाला तो नहीं ।

अखिलेश : (खिन्न स्वर में) सुन लिया न, माँ । पिता जी को मेरी किसी पसन्द, नापसन्द से कोई मतलब नहीं । और तुम कहती हो, पिता जी को दिखा लो । लो, अब तुम्ही उन्हें दिखा लेना । मैं छत पर चला।

[तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज।]

[पात्र पर पानी गिरने की ध्वनि, फिर गुस्से में थाली समेटने की आवाजें।]

कौशलेन्द्र : (कुछ आक्रोश में) तुमने यह दालान क्या खड़ा कर लिया कि समझो कोपभवन बनवा दिया है । कुछ बात हुई नहीं कि सीढ़ियाँ छड़पते हुए ऊपर पहुँच गये । छोटा रहे कि बड़ा—सबकी एक गति ।

शांति : चुप रहिए । आप को बच्चों की खुशी से कोई मतलब भी है क्या। फुलपैंट शौक से खरीद कर लाया है । जरा-सा देख ही लेते, तो क्या हो जाता।

कौशलेन्द्र : (व्यंग्य से) क्या देख लेता । कोई ताजमहल तो उखाड़ कर नहीं लाया है । फुलपैंट लाया है । वह भी, जो दो सौ में मिल सकता है, उसे दो हजार में । डिजायन क्या, जाँघ और ठेहुना पर फटा-सा लगता है । उसे रफू भी इस कदर गया है कि जैसे योगी का कंथा सिया हो । अमीरों का दरिद्र दिखने का कितना बड़ा ढोंग । और तुम कहती हो, उसी ढोंग को देखूँ ।

शांति : (झुंझलाया स्वर) मत देखिए, लेकिन व्यंग्य तो मत बोलिए । आपका जमाना तो रहा नहीं कि बिना क्रीच वाला पजामा पहन लिया और बिना चप्पल पहिने कॉलेज पहुँच गये ।

कौशलेन्द्र : (थोड़ा गंभीर होते) मैं जान रहा हूँ, शांति, तुम मेरे बीते दिनों की गरीबी की ओर अंगुली उठा रही हो । तो, तुम जान लो, मुझे तो पजामा भी नसीब नहीं था, हाफ पैंट पहन कर कॉलेज जाता था, और वह भी नंगे पाँव । पजामा और फुलपैंट पहनने से क्या आदमी की बुद्धि भी उसके जैसी लम्बी हो जाती है ? ऐसा होता, तो गाँधी जी भी लंगोटी छोड़ फुलपैंट ही पहनते ।

शांति : छोड़िए छोड़िए, जवानी में गाँधी जी भी फुलपैंट और कोट ही पहनते थे । ये लीजिए तौलिया और उठिए।

[पुनः थाली, ग्लास को खिसकाने की आवाजें।]

[दृश्यांतर।]

[दरवाजे खुलने की आवाज।]

शांति : (मनुहार का स्वर) सुन रहे मेरी बात, कल तो अखिलेश दिल्ली निकल ही जायेगा। पिता हैं आप, अब थोड़ी देर उससे बातें तो कर लीजिए। उसे भी लगेगा...

कौशलेन्द्र : मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि आखिर उससे क्या बातें करूँ । एक काम करो, मेरे बदले दो घंटे और तुम ही बातें कर लो ।

शांति : (थोड़ा करुण स्वर) तो, आप मेरी यह भी बातें नहीं मानेंगे ?

कौशलेन्द्र : तो ठीक है, मैं बातें कर लूँगा । अब तुम्हीं बताओ कि अखिलेश से मैं क्या-क्या बातें करूँ ?

शांति : (अकुताहट) क्या यह भी मैं ही बताऊँगी ।

कौशलेन्द्र : (परेशानी से) और नहीं तो क्या । मैं अगर उससे बातें करूँगा, तो जानती हो, उससे क्या कहूँगा ।

शांति : क्या ?

कौशलेन्द्र : (तेज तेज स्वर में) यही कि तुम्हें पता भी है, दिल्ली में सिर्फ डेंगू और चिकनगुनिया बीमारियाँ ही नहीं हैं, ये बीमारियाँ तो पुरानी हो गई हैं, अब वहाँ विदेश से स्वाइन फ्लू जैसा कठिन रोग पहुँच गया है। और इस रोग से बड़े पहलवान के दम फूल रहे हैं, तो तुम्हारा क्या होगा, जिसे साँस लेने से भी सर्दी हो जाती है ।

शांति : भगवान के लिए ऐसी अशुभ बातें हमेशा मत निकाला कीजिए । कभी तो अच्छी बातें किया कीजिए । जब देखिए, बस वही ।

कौशलेन्द्र : (व्यंग्य से) भाग्यवन्ती, जो सच है, वही तो बोल रहा हूँ, झूठ बोलने और सुनने के लिए तो तुम हो ही ।

शांति : (गुस्से में) तो, मैं झूठ बोलती और सुनती हूँ ?

कौशलेन्द्र : उत्तेजित मत हो, शांति, झूठ बोलने और सुनने के भी प्रकार होते हैं। झूठ में हाँ-हाँ करना भी झूठ बोलना ही है ।

शांति : तो, किस झूठ में मैंने हाँ-हाँ किया है ?

कौशलेन्द्र : सुनना चाहती हो, तो सुनो । तुम्हारा लड़का अखिलेश एम. सी. ए. करने दिल्ली जा रहा है ?

शांति : अखिलेश आपका लड़का नहीं है क्या ?

कौशलेन्द्र : चुपचाप सुनो, बीच में बोलो मत । अखिलेश दिल्ली जा रहा है ?

शांति : (शांत स्वर में) जा रहा है ।

कौशलेन्द्र : दिल्ली कोई भागलपुर का भीखनपुर नहीं है कि हजार रुपये में एक कोठरी, कीचन, और बाथरूम मिल जायेंगे । दिल्ली है, इसी के लिए कम-से-कम उसे पाँच हजार चुकाने होंगे ।

शांति : अब दिल्ली में रहेगा, तो....।

कौशलेन्द्र : बीच में मत बोलो, सिर्फ सुनो । वह दिल्ली से बहुत दूर रहेगा, तब? और अगर तुम्हारे लाडले का ट्रेनिंग सेंटर खास दिल्ली में हुआ, तो ? खास दिल्ली में रहने का मतलब समझती हो । मान लूँ, तुम वह भी दे दोगी । अभी गाँव वाली जमीन बेची हो । पैसे की कमी तो है नहीं ।

शांति : सन्तान के भविष्य के लिए कौन क्या नहीं करता है ?

कौशलेन्द्र : कहा न, बीच में बोलो मत, सुनो और मान लो ट्रेनिंग भी पूरी हो गई, नौकरी नहीं मिली, तब ?

शांति : तो, उसे और पढ़ने के लिए विदेश तक भेज दूँगी । गाँव वाला मकान भी बेच दूँगी । गाँव में वह मकान रह के भी क्या होगा । कौन जायेगा । घर भी है, तो महल जैसा । दस लाख से कम में नहीं बिकेगा ।

कौशलेन्द्र : चलो यह भी ठीक है । गाँव का मकान भी बिक गया । दस लाख आ भी गये । तुम्हारा अखिलेश कनाडा और आयरलैंड भी चला गया, और मान लो, वह वहाँ बड़ी कम्पनी का मैनेजर भी हो गया, तो क्या होगा?

शांति : (आश्चर्य) पता नहीं, आप किस तरह से सोचते हैं । अरे, वह आप की तरह नहीं कमाना चाहता । अखबार में लिख-लिख कर आप दस साल में जितना कमाये हैं, वह एक दिन में कमायेगा ।

कौशलेन्द्र : (ठंडे स्वर में) मान लिया तुम्हारी यह भी बात सही निकली, लेकिन उसमें तुम्हें कितना मिलेगा ?

शांति : (उत्साह से) अरे, अखिलेश मेरा बेटा है, जितना कमायेगा, तो घर के लिए ही न ।

कौशलेन्द्र : गलत ख्यालों में डूबे रहना भी एक प्रकार का झूठ है । शांति, तुम्हें अपने बेटे को परदेश और विदेश भेजने की प्रेरणा जहाँ से मिली है, पहले उन घरों में जा कर तो देखो । द्वारकानाथ, आशुतोष बाबू, चन्द्र सेठ, विश्वेसर पांडे ने भी अपने बेटों को विदेश भेजा था—इसी मोह में कि बेटे की कमाई से घर स्वर्ग हो जायेगा । अब उन्हें सच्चाई

मालूम हो रही है ?

शांति : क्या मालूम हो रही है ?

कौशलेन्द्र : यही कि दोनों बेटों ने वहीं विदेश में शादी कर ली, घर बसा लिया। विदेश की कमाई ही उतनी कि घर भेजने को फूटी कौड़ी नहीं बचती। जिन्दगी भर की कमाई और पेंशन बेच कर बेटों को विदेश भेजा था, और बेटे भेज रहे हैं सिर्फ टेलीफोन पर संदेश ।

शांति : नहीं बचता है, तो कहाँ से भेजेगा ।

कौशलेन्द्र : अरे भाग्यवन्ती, अगर अपना ही पेट पालना था और अपनी बीबी, अपने बच्चे के ही, तो देश में उनके लिए क्या नौकरी नहीं थी ? ठेले चलाने वाले भी अपने परिवार को बढ़िया से चलाते हैं ।

शांति : तो, आप क्या चाहते हैं, मेरा बच्चा भी ठेला चलाए।

कौशलेन्द्र : मैं यह कहाँ कह रहा हूँ । मैं तो बस यह कह रहा हूँ कि ठेले वाले हमलोगों से अच्छे हैं । ये देश में कमाते हैं, इनके श्रम देश के लिए हैं और फिर इनकी कमाई भी देश में ही रहती है । जान लो, शांति, यह देश इन्हीं जैसे लोगों की कमाई पर चलता है, अंग्रेजी पढ़ने वाले और अंग्रेजों की सेवा करनेवालों से नहीं ।

शांति : इसमें अंग्रेजों की सेवा करने वाली बात क्या हो गई । यह कोई जरूरी तो नहीं कि अखिलेश विदेश ही चला जायेगा । यहाँ नौकरी मिलेगी, तो यहीं नौकरी करेगा ।

कौशलेन्द्र : भाग्यवन्ती, तुम्हारा अखिलेश यहाँ नौकरी करेगा भी, तो क्या तुम्हारे बड़े बेटे जैसा किसी मिडिल स्कूल और कॉलेज में । उसे बड़ी कम्पनी की नौकरी चाहिए, जिसका सपना तुमने उसे पढ़ने के साथ दिखाया है। और बड़ी कम्पनी देश में किसकी है—घुमा-फिर कर विदेशी मालदारों की । तब समझो, तुम्हारा बेटा देश में रह कर भी विदेश में ही विदेशी नौकरी करेगा । क्या समझी ।

शांति : (गुस्से में) मुझे फालतू की बातें नहीं समझनी । आप के इस स्वदेशी चिन्तन से देश का चाहे जितना भला हो, इस घर का भला होने से रहा।

कौशलेन्द्र : वह तो नहीं होगा । कभी मेरी बात तुमलोगों ने रखी भी है क्या ?

आर्द्रा : (कुछ दूरी से फुसफुसाहट में) माँ, (फिर कुछ तेज मगर फुसफुसाहट के स्वर में ही) माँऽऽ, तुम यहाँ आओ, यहाँ आओ न।

शांति : (कुछ उत्तेजित होते) तो ठीक है, आप को अखिलेश से नहीं मिलना

है, तो ना सही, मैं ही उसे स्टेशन भी छोड़ आऊँगी। आप के भरोसे घर नहीं चलता ।

[दरवाजे भिड़काने का स्वर।]

[दृश्यांतर।]

[ट्रेन खुलने की आवाजें : फेड आउट। झींगुर की झनझनाहटें। टेलीफोन की घंटी घनघनाती है।]

शांति : हेलो ।

अखिलेश : माँ, ट्रेन खुल गई है । ऊपर का बर्थ मिला है । अब कल सुबह बातें होंगी, ठीक है ।

शांति : (हर्ष से) ठीक है, ठीक है बेटा । अपना खयाल रखना ।

[रिसीवर रखने की ध्वनि के साथ झींगुर की झनझनाहटें तेज । झनझनाहट के बीच ही भय में बड़बड़ाने का पुरुष स्वर।]

आर्द्रा : माँ, लगता है, पिताजी सपना देख रहे हैं।

[पदचाप/फाटक खुलने की आवाज।]

शांति : (हड़बड़ाहट का स्वर) सुन रहे हैं, जगिए !

कौशलेन्द्र : (भय का स्वर) हाँ, हाँ, अच्छा किया कि जगा दिया । उफ्, कैसा दुःस्वप्न था ।

शांति : आखिर क्या देख लिया ! आप तो स्वप्न में ऐसे कभी नहीं चीखते थे।

कौशलेन्द्र : (बहुत विकलता के स्वर में) बहुत बुरा स्वप्न था, शांति; बहुत बुरा स्वप्न।

शांति : आखिर क्या ?

कौशलेन्द्र : देखा, घूमते-घूमते मैं मंदिर वाले कुँए के पास जा पहुँचा हूँ। लेकिन वहाँ तो अजीब दृश्य छाया हुआ था । गाँव के मन्दिर वाले उस भुताहा कुँआ पर गाँव भर के लोग जुड़ गये थे, गहरे कुँए में झाँकने के लिए धक्का-मुक्की हो रही थी। मैंने एक से पूछा, तो बताया कि कुँए के पेट में, ईंट के आकार की, एक मणि निकल आई है, और जिस कुँए का पानी तक नहीं दिखता था, उसमें प्रकाश भर गया है।

शांति : (उपेक्षा से) अरे, ऐसे सपने को ले कर इस तरह परेशान होने की क्या जरूरत !

कौशलेन्द्र : लेकिन मैंने जो देखा है, वह परेशान करने वाला है । मैं जब तक

लोगों के पास पहुँचता, कुँए में झाँकता; देखा, एकेक कर सभी उस भुताहा कुँए में उतर गये थे । पास पहुँच कर मैंने जब झाँका, तो उसमें एक भी आदमी नहीं था । पानी के नीचे मणि-सी कुछ बड़ी चीज प्रकाशित थी। कुँए में आदमी को नहीं देख कर मैं चीखने लगा। लेकिन मेरी आवाज सुनकर वहाँ कोई नहीं आया। जो कुछ आ रहा था, वह, चारों दिशाओं से एक साथ ही सैकड़ों कुत्तों का डरावना रुदन था।

शांति : ऐसा भी कहीं होता है ? मैंने कई बार कहा है, बिछावन पर जाइए, तों पैरों को धो लिया कीजिए । छाती पर हाथ रख कर मत सोइए, लेकिन आप हैं कि अपनी आदत से लाचार हैं। चलिए, मन में कोई अच्छी-सी बात लेकर सो जाइए !

कौशलेन्द्र : तुम गलत नहीं कह रही हो, शांति; लेकिन डरावना स्वप्न कहीं सच न जो जाए, अब तो यही डर मेरे मन में समा गया है। तुम जाओ, सो जाओ। मुझे तो यह डर तब तक परेशान करेगा, जब तक मेरी आँखें खुली हैं, शायद आँखें लगने के बाद भी । ओह, कैसा भयावह दृश्य था वह ।

[दरवाजे भिड़काने का स्वर।]

[उदास संगीत के उभार के साथ समाप्ति सूचक संगीत।]

अमृतकुंभ मंदार

[आरम्भ संगीत के अनन्तर स्त्री-पुरुष के स्वर में गीत-पाठ।]

निदेशक : छाँव यह मन्दार की ।
रोज गिरि के शिखर पर से
उदधि उत्थित अमिय बरसे,
भीगता है मन-पथिक यह
कौन गुजरा है इधर से;
गूँज है झंकार की ।
छाँव यह मन्दार की ।

इक व्यथा मंथन-कथा की
दीप्त आभामय तथापि,
मूर्त्तियाँ ऐसे सुशोभित
पंक्तियाँ ज्यों वन्दना की;
स्मृतियाँ मधुभार की ।
छाँव यह मंदार की ।

वाचक : सच ही तो, करोड़ों-करोड़ वर्षों से खड़े मन्दार पर्वत की कथा आज भी आभामय है, दीप्त है, जिसके शिखर से अमृत की फूटी धारा की कलनाद कथा आज भी जग को झंकृत करती है ।

वाचिका : मंदार, जिसने देवताओं को अमृत का दान किया; मंदार, जिसका अर्थ ही होता है— स्वर्ग; अआखिर अअंगप्रदेश के किस भूखण्ड में यह अवस्थित है, अपने अतीत की स्मृतियों का मधुभार लिए !

[ढोल, मृदंग, झाल के संगीत के साथ संवाद।]

नटी : भागलपुर की भागीरथी के दक्षिण में मंदार,
अंगदेश के हृदय-वक्ष पर अमृत का मधुभार।

नट : झारखण्ड के दुमका से उत्तर चौवालिस मील,
सागर-मंथन-दण्ड बना जो, शिव-सा गहरा नील।

नटी : असुरों का आराध्य देव ही, पूजित यह मंदार,
जिसकी गाथा सुर-नर से ले गाता है संसार।

नट : इन असुरों के देव महाशिव का मंदार यह घर है,
कथा पुराणों में यह वर्णित, अब भी अजर-अमर है।

नटी : इस पर्वत के पदतल पर ही बहती चीर नदी है,
कभी क्षीर सागर कहलाती, चुप यह कहाँ सदी है।

नट : है पुनीत कितना मंद्राचल,
नीलम पत्थर का हो शतदल।
नील वर्ण; विष्णु का आसन,
शिव का जो निश्चित भद्रासन ।
[संगीत झंकार।]

वाचक : हाँ, मंदार पर्वत के पदतल पर प्रवाहित चीर नदी ही लोक में क्षीर सागर के नाम से प्रसिद्ध नदी है, जिसके किनारे विष्णु का निवास कहा गया है ।

वाचिका : विष्णु के रंग-रूप से असुर बहुत प्रभावित थे, इसी से शिवभक्त असुर विष्णु को बहुत चाहते थे, लेकिन अन्य देवताओं को शायद नहीं ।

वाचक : पुराण कथा है कि विष्णु से प्रकट हुये ब्रह्मा, एक बार मंदार की शोभा से विमुग्ध, पर्वत पर ध्यानस्थ हो गये, कि तभी असुरराज की दृष्टि ब्रह्मा पर पड़ी, जिससे उसका क्रोध ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा ।
[ब्रिज म्यूजिक।]

मधु : (अत्यन्त गुरु गंभीर स्वर में) कौन हो तुम, और मेरे उस साम्राज्य में, बिना मेरे आदेश के, किसके ध्यान में लीन हो ?

ब्रह्मा : मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ । भगवान विष्णु मुझे प्रकट कर स्वयं तपस्या में लीन हो गये हैं, अब मैं उनकी ही तपस्या कर रहा हूँ ।

मधु : (क्रोध और अहंकार के स्वर में) विष्णु ! हा, हा, हा, हा, हा । वह भगवान कब से हो गया । (और भी तेज स्वर में) ब्रह्मा, इस मंदार क्षेत्र में, मेरे इष्ट के सिवा, किसी और की तपस्या करने का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं है । तुम्हारे विष्णु को भी नहीं ।

ब्रह्मा : (नम्रता से) मैं जान सकता हूँ, कि शिलाखंड-सा प्रशस्त वक्ष और लौह दण्ड की भुजाओं को धारण करनेवाले आप दोनों कौन हैं ?

मधु : लगता है, मंदार साम्राज्य के स्वामी असुरराज मधु के संबंध में तुम्हें कुछ भी ज्ञात नहीं। ब्रह्मा, मेरी आज्ञा के बिना तुमने मंदार पर विष्णु की तपस्या की है, इसका दण्ड मैं तुम्हें अवश्य दूँगा । मैं अभी ही तुम्हारा शिरोच्छेद करता हूँ ।

ब्रह्मा : लेकिन मैं निरपराध हूँ, मैं सत्य से अनभिज्ञ था ।

मधु : यही तो तुम्हारा अपराध है । मेरे अनुज कैटभ, खड्ग से इस विष्णुभक्त को टुकड़ों में कर दो ।

ब्रह्मा : (विह्वल स्वर में) हे नारायण, हे विष्णु, त्राहिमाम !

[संगीत अचानक तीव्र होता हुआ, जो दिव्य आत्मा के अवतरण का संकेत दे।]

विष्णु : कैटभ, अपने खड्ग को नीचे करो !

मधु : (गुस्से में) विष्णु, तुम यहाँ ?

विष्णु : (नम्रता से) तुमने प्रजापति पर खड़ग से प्रहार करने का आदेश दे कर जिस अधर्म को स्थापित किया है, मधु, उसका दण्ड तो सिर्फ यही है कि मैं तुम्हारे सर को ही धड़ से अलग कर दूँ । लो, संभालो इस चक्र को ।

[गति सूचक ध्वनि तेज होती हुई, पुनः वही अट्टहास।]

विष्णु : (आश्चर्य के स्वर में) अरे, यह तो सर से अलग होकर भी युद्ध करने को तत्पर है । क्यों न इसे इसी पर्वत के नीचे दबा दूँ ।

मधु : (अट्टहास) विष्णु, तुम्हारे मन में उठ रही बातों को जान रहा हूँ । मैं मंदार को अपनी अपार शक्ति से हिलाकर बाहर आ जाऊँगा ।

विष्णु : तुमने ठीक ही कहा, मधु । तुम्हारी इस दुर्दम्य शक्ति को मैं भी जानता हूँ, इसी से मैं तुम्हारे धड़ को मंद्राचल के नीचे रख कर, पर्वत के शिखर पर बैठ जाऊँगा, और अपने पैरों से ही मंदार को दबाए रखूँगा, ताकि तुम किसी भी कल्प में बाहर न हो सको ।

[संगीत प्रवाह।]

वाचिका : असुरराज मधु के वध के कारण ही विष्णु का एक नाम मधुसूदन हो गया।

वाचक : और मंदार के शिखर पर विष्णु के वास हो जाने के कारण मंदार का संबंध मधुसूदन से जुड़ गया । मंदार का महत्व मधुसूदन के कारण

और भी त्रिलोकव्यापी बन गया ।

[पृष्ठभूमि में स्तुति पाठ।।]

चीर चान्दनयोर्मध्ये मन्दारो नाम पर्वतः
तस्यारोहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत ।
मंदार शिखरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा मधुसूदनम्
कामधेन्वा मुखं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।

वाचक : यह कथन वृहद विष्णु पुराण का है कि चीर और चानन नदी के मध्य में अवस्थित मंदार के शिखर, और शिखर पर अवस्थित मधुसूदन के दर्शन से मनुष्य को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है; वह नर से नारायण हो जाता है।

वाचिका : अंगप्रदेश की दो सुविख्यात और प्राचीनतम नदियों के बीच अवस्थित इसी मंदार को, कभी सुरों और असुरों ने मिलकर, सागर मंथन के लिए दण्ड बनाया था ।

वाचक : आज विद्वान भले ही सागर-मंथन की सामाजिक आर्थिक, धार्मिक व्याख्या कर रहे हों, लेकिन इससे इसका ऐतिहासिक महत्व ध्वस्त नहीं हो जाता है ।

वाचिका : इतिहास साक्षी है कि पूरा-का-पूरा यह अंगप्रदेश ही असुरों का साम्राज्य था, और मंदार क्षेत्र उनका स्वर्गलोक ।

वाचक : मंदार पर्वत अपने आस-पास के विस्तृत घने जंगलों को मेघों का वरदान बाँटता था, जिन जंगलों में विशालकाय हाथियों का वास होता, आक-जवासों के फूल खिलते, जिन फूलों से ही असुर अपने देवता शिव की अराधना करते, पूरा-का-पूरा पर्वत ही उनके लिए शिव था, क्योंकि मंदार तब भी विशाल शिवलिंग रूप में ही था, यह आज भी है ।

वाचिका : ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित मंदार पर्वत अपनी ऊँचाई में आज लगभग सात सौ फीट तक सीमित रह गया है, और लगभग चार मील की परिधि में बंधा हुआ लेकिन एक ही चट्टान से निर्मित विशाल शिवलिंग की तरह मंदार पर्वत की शोभा आज भी अलौकिक छवि को सृजती है ।

वाचक : पुराणों की कथाओं से यही ज्ञात होता है कि मंदार मधु-कैटभ जैसे असुर भाइयों के ही अधीन था, और अग्रज होने के नाते मधु यहाँ का अधिपति था, लेकिन मंदार की रक्षा का भार राहु जैसे असुर रक्षकों

पर भी होगा।

वाचिका : पूर्व दिशा में प्रवाहित हो रहे आर्यों को जब मंदार का महत्व ज्ञात हुआ होगा तब उन्होंने इसे अपने अधीन करने की इच्छा की होगी । लेकिन मधु- कैटभ और राहु जैसे अति पराक्रमी असुरों के कारण यह संभव ही नहीं था ।

[ढोल, मृदंग का संगीत-प्रभाव।]

नट : तब देवों ने चाल चली यह, कर ली संधि असुर से,
जुटने लगे देवगण अब तो, अपने-अपने पुर से ।

नटी : और हुआ निश्चित नक्षत्र, कातिक की एकादशी थी,
असुरों और सुरों के मन में, इच्छा एक बसी थी ।
जो मंथन से निकलेगा, वह दोनों बीच बँटेगा,
सोच रहे थे दोनों, कुछ भी किसका कहाँ घटेगा ?

नट : फिर तो बासुकी नाग-रज्जू से मथने लगे वे सागर,
चाँद, सुरा, ऐरावत, लक्ष्मी, और अमृत का गागर ।
ऊपर आए रत्न चौदहों । इक अमृत की खातिर,
भिड़े असुर-सुर आपस में ही, कोई नहीं था इस्थिर।

नटी : विष्णु बने तब भुवनमोहिनी अमृतघट ले कर में,
लगे बाँटने देवों में ही, बाकी रहे अधर में ।
राहू समझ गया सब चालें, घुसा सुरों के दल में,
पी कर अमृत अमर हुआ वह, अद्‌भुत जो था बल में।

नट : क्रुद्ध विष्णु का चला सुर्दशन, लेकिन राहू अमर है,
मंद्राचल की चट्‌टानों पर अंकित-लिखित समर है ।

[ढोल, मृदंग का संगीत-प्रभाव।]

वाचक : मंद्राचल की मथनी और समुद्र मंथन की पुराकथा अगर धर्मकथा की तरह लगती है, तो इसका एक कारण यही है कि भारत का प्राचीन इतिहास पुराणकथा के रूप में लिखित है ।

वाचिका : अगर इतिहास और भूगोल को आमने-सामने रख कर देखें, तो तथ्य स्वतः ही उभर आयेंगे।

वाचक : भारत के भूगोल में तीन पर्वतों, मंदार, विन्ध्याचल और हिमालय को अत्यधिक प्रमुखता प्राप्त है । इन पर्वतों में हिमालय तो अन्य दो की तुलना में किशोर उम्र का ही है।

वाचिका : जहाँ तक मंदार का प्रश्न है, वह तो अब अपनी काया से जर्जर हो

चला है । हिमालय का शरीर फैल रहा है, और मंदार की काया सिकुड़ गयी है । यह इसीलिए कि हिमालय से करोड़ों-करोड़ वर्ष पूर्व मंदार का जन्म हो चुका था । यह वही पर्वत है, जहाँ से दक्षिण भारत का उत्स प्रारम्भ होता है, मंदार और विन्ध्याचल की चट्टानें एक जैसी हैं ।

वाचक : यह वही मंद्राचल पर्वत है, जो आदिदेव शिव का पूर्व गृह है । बाद में कैलाशवासी हुये। लेकिन वहाँ भी कहाँ स्थायी रूप से रह पाये ! असुर त्रिपुरासुर अपनी तपस्या से शिवपुत्र गणेश को प्रसन्न करने में सफल हो गया।

वाचिका : फिर तो क्या था, उसने न केवल देवताओं के लोक को अपने अधीन कर लिया, बल्कि कैलाशपुरी पर भी आक्रमण कर दिया ।

[ब्रिज म्यूजिक।]

शिव : (आश्चर्य के स्वर में) आश्चर्य ! जो कैलाश मेरा आसन है, वही किस कारण इस तरह कम्पित है ?

त्रिपुर : (गंभीर अट्टहास) नीचे देखो, शिव । मेरी बाँहों में तुम्हारा कैलाश पर्वत किस तरह सिमटा पड़ा है । मैं चाहूँ, तो इसे एक पल में छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ । (पुनः अट्टहास।)

शिव : त्रिपुरासुर, तुम !

त्रिपुर : हाँ, मैं त्रिपुरासुर ही हूँ । तुम अपना हित चाहते हो, तो कैलाशपुरी मुझे सौंप दो !

पार्वती : हे मेरे स्वामी, आप इस असुर की ऐसी विधर्मी बातें सुनकर भी मौन क्यों हैं ! आप का क्रोध क्यों नहीं उबलता?

शिव : नहीं प्रिये, तुम त्रिपुरासुर की शक्ति से परिचित नहीं । अच्छा होगा, कि हम कैलाश छोड़कर अपने पूर्व गृह मंद्राचल को लौट जाएँ, जहाँ इस असुरराज का प्रभाव पहुँच ही नहीं सकता है ।

[संगीत प्रवाह।]

नट : पा कर के कैलाश को, बढ़ा त्रिपुर का मान,
फिर तो तब मंदार पर, गया असुर का ध्यान ।

त्रिपुर : (अट्टहास, फिर अत्यधिक गंभीर स्वर में) शिव, मंदार शिखर से तुम नीचे निहारो । देखो, मैं त्रिपुरासुर हूँ । मेरी इच्छा है कि तुम इस मंद्राचल को भी मुझे सौंप दो । और अगर तुम इस पर्वत को नहीं ही देने के इच्छुक हो, तो ऐसा करो, कि पार्वती को ही मेरी सेवा में

नियुक्त कर दो !

पार्वती : स्वामी, स्वर्गलोक से अधिक सुषमामय इस मंद्राचल को क्या किसी तरह इस असुर को सौंपा जा सकता है ?

शिव : (आवेश में) प्रिये, न तो मैं अपने इस गृह को किसी के अधीन कर सकता हूँ, और न अपनी प्रिया को । यह मंदार पर्वत है, यहाँ आकर कोई भी संकट अधिक देर टिक ही नहीं सकता । यह पर्वत मेरा स्वर्ग है, इसी से मैं इसे मंदार कहता हूँ ।

[संगीत-प्रवाह।]

नट : इतना कहना था कि शिव के हाथों मरा असुर वह,

नटी : बोल रहे हैं मंद्राचल के पत्थर और कमलदह।

[संगीत-प्रवाह।]

वाचक : पुराण के इस मंद्राचल की नव भौगोलिक स्थिति को देखकर कभी-कभी यह शंका हो उठती है,

वाचिका : क्या वर्त्तमान का मंद्राचल महाभारत काल का ही मंद्राचल है ? अगर है, तो कहाँ है वह सागर, और कहाँ हैं वे रत्न ?

वाचक : लेकिन इतने लाखों वर्षों के बाद यहाँ वह समुद्र कैसे हो सकता है, हाँ, अंग प्रदेश का भूगोल इसका संकेत अवश्य देता है ।

वाचिका : जब बंगाल की भूमि अस्तित्व में नहीं आई थी, तब वर्त्तमान में बंगाल की खाड़ी का समुद्र इस मंद्राचल को छू कर लहराता था । लेकिन यह भौगोलिक कथा अंग प्रदेश में आर्यों के आगमन से बहुत पूर्व की है।

वाचक : तब यही संभव है कि समुद्र का कोई छूटा हुआ हिस्सा, विस्तृत झील के रूप में यहाँ अवस्थित हो । प्राप्त जीवाश्म से यहाँ समुद्र के होने की बात तो अब वैज्ञानिक भी स्वीकारते हैं । मंदार पर्वत उसी शेष सागर के बीच खड़ा होगा ।

वाचिका : अपनी अद्‌भुत प्राकृतिक छटा और वानस्पतिक सम्पदा के कारण मंदार आरम्भ से ही अनार्यों-आर्यों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा होगा ।

वाचक : समस्त राग-द्वेष से मुक्त होकर, और अपनी सारी सम्पदा को दान करने के बाद परशुराम ने इसी मंद्राचल को अपना निवास स्थान बनाया था, जिसे पुराणों में महेन्द्राचल पर्वत के नाम से जाना गया है । महेन्द्राचल ही मंद्राचल और मंद्राचल से मनराचल बन गया है। अब तो यह नाम घिस कर और भी छोटा हो गया है । 'मनार' से

महेन्द्राचल का बोध हो जाता है। इसी मंद्राचल पर, कभी कर्ण ने परशुराम से इच्छित विद्या को प्राप्त करने की असफल कोशिश की थी, और अभिशापित हो गया था।

वाचिका : मंद्राचल को महेन्द्राचल कहने के पीछे भी पुराण का विशेष उद्देश्य रहा हो ।

वाचक : पुराण प्रसिद्ध बात है कि इन्द्र का संबंध मंद्राचल से ही था। कहने के लिए तो इतिहासकार यहाँ तक कहते हैं कि इन्द्र असुर ही था, जिसे देवताओं ने भी अपना देवराज बना दिया था; इसलिए कि असुर इन्द्र ने देवताओं की रक्षा में असुरों के दृढ़ किलाओं का भेदन किया था ।

वाचिका : लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि अनार्यों या असुरों के प्रति वह क्रूर हो गया था । जब खाण्डव वन जल रहा था, तब नागों की रक्षा के लिए इन्द्र ने पन्द्रह दिनों तक बादल और वर्षा से अर्जुन को विकल कर रखा था ।

वाचक : महाभारत कहता है कि क्रुद्ध इन्द्र ने, विरोधियों पर, मंदार के शिखर को उठा कर प्रहार किया था । खाण्डव वन कहाँ था, यह तो अनुसंधान का विषय है, लेकिन इन्द्र का, नागों की रक्षा के लिए, मन्दार का शिखर लेकर प्रहार करना, बंद इतिहास को खोलने में सक्षम है । यहाँ इस तथ्य को रखना अनुचित नहीं होगा कि अंग प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र नागवंशो की कथाओं से जुड़ा हुआ है । पुण्डरीक, जो नागवंश का संस्थापक राजा था, उसी के नाम पर पौण्ड्र राज्य की भी स्थापना हुई थी । पौण्ड्र आज के बिहार राज्य का पूर्णिया जिला है, जो पूर्ण अरण्य होने के कारण ऐसा कहाया । इससे पता लगता है कि नागों का राज्य अंग प्रदेश के दक्षिण से लेकर उत्तर तक फैला हुआ था, और एक देशीय होने के कारण नागों से इन्द्र की गहरी निकटता थी, जिस कारण ही खाण्डव की रक्षा के लिए इन्द्र ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी।

वाचिका : नारदीय महापुराण के अनुसार अंगप्रदेश के राजमहल की गंगा के तट पर ही घोर तपस्या के बाद शची ने इन्द्र को पति रूप में प्राप्त किया था, जिस कारण यह क्षेत्र इन्द्राणी तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। यह कथा भी इन्द्र के स्थान की ओर संकेत करती है ।

वाचक : पुराण कथा के ही अनुसार उर्वशी समुद्र मंथन के क्रम में ही प्रकट हुई

थी, जो देवराज इन्द्र की प्रमुख अप्सराओं में अद्वितीय थी ।

वाचिका : यहाँ यह भी स्मरणीय हैं कि इन्द्र का वाहन हाथी है, अश्व नहीं, जबकि आर्य अश्वारोही थे, गजारोही नहीं । इन्द्र का वाहन हाथी ऐरावत ही था, बिल्कुल सफेद ।

वाचक : इतिहास से प्रमाणित तथ्य है कि अंग प्रदेश का यह क्षेत्र सफेद हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। देवराज के पास सफेद हाथी का होना, जिस तथ्य की ओर संकेत है, वह इतिहास के बंद पन्नों को खोलता है। आखिर हाथी का एक नाम मंदार भी क्यों है !

वाचिका : इन्द्र अत्यधिक बलशाली पुरुष था, और अपने इस अहंकार के कारण वह ऋषियों के अपमान में भी नहीं चूकता था । कथा है कि एक बार अपने ऐरावत पर सवार इन्द्र मंद्राचल के निकट से गुजर रहा था कि तभी उसे ऋषि दुर्वासा आते हुए दिखाई पड़े ।

[ब्रिज म्यूजिक।]

[हाथी के चिग्घाड़ने का ध्वनि-प्रभाव।]

इन्द्र : ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा को मेरा नमस्कार है !

दुर्वासा : सुराधिपति इन्द्र को मेरा आशीर्वाद ।

इन्द्र : आप को मंद्राचल की भूमि पर देख रहा हूँ, ऋषिवर ! आप तो कहोल गाँव की पहाड़ी कासड़ी को कभी नहीं छोड़ते ।

दुर्वासा : सुरपति इन्द्र, मंद्राचल की शोभा ने जब भगवान विष्णु को ही इस भूमि पर बसने को विवश कर दिया है, तब इस दुर्वासा ऋषि का क्या । आकाशगंगा के दर्शन के लिए आया था, तो भगवान विष्णु से भी मिलते चला गया। पारिजात पुष्पों की यह माला उन्होंने ही मुझे दी है।

इन्द्र : अहा, अद्‌भुत है पारिजात ! मंद्राचल के सरोवरों-कुण्डों में विकसित होनेवाला यह पारिजात पुष्प ! उस पर पारिजातों से बनी यह माला!

दुर्वासा : (हर्ष से) अब मैं इस माला को देवराज इन्द्र के गले में डालना चाहता हूँ !

इन्द्र : क्षमा करें, ऋषिवर, ! ऐरावतासीन होने के कारण मेरी गर्दन आप तक नहीं झुक सकती। फिर मेरी प्रिया इन्द्राणी भी मेरे साथ है । इसे आप मेरे ऐरावत के लम्बे दाँतों पर ही डाल दें ।

दुर्वासा : सुरपति इन्द्र, आप ने यह तो सोचा होता कि पारिजात पुष्पों की यह माला भगवान विष्णु की दी हुई है । ऐरावत के दाँतों पर रखने से इस

माला का क्या अपमान नहीं होगा !

इन्द्र : कुछ भी नहीं, ऋषिवर । पारिजात और मेरा यह ऐरावत, मंद्राचल की ही अमूल्य निधियाँ हैं । इसी से दोनों को हम मंदारवासी मंदार ही कहते हैं । फिर पारिजात की माला को ऐरावत के दाँतों पर रखने से उसका अपमान कैसा ? आप बिना किसी संकोच के माला ऐरावत दन्तों पर रखकर निश्चिन्त हो सकते हैं ।

[ढोल-मृदंग की ध्वनियाँ।]

नट : ऋषि ने ऐरावत के दाँतों पर रक्खी वह माला,
लेकिन ऐरावत ने उसको ऊपर तुरत उछाला ।
[हाथी के चिग्घाड़ने की आवाज।]

नटी : माला गिरी, किया ऐरावत ने उसको श्रीहीन,
क्रोधित हुए तुरत दुर्वासा, दुख से होकर दीन ।

नट : और शाप दे डाला ऋषि ने, इन्द्र हुआ श्रीहीन,
लगे भटकने मंद्राचल पर, होकर दुख से दीन ।

नटी : देख इन्द्र को दीन, किया देवों को दलित असुर ने,
लगे दहलने देव, नई इक चाल चली तब सुर ने ।
[ब्रिज म्यूजिक।]

वाचक : चूँकि इन्द्र असुरों के भी पूजनीय था और देवताओं का भी राजा, इसी से विष्णु ने एकत्रित हुए देवों से कहा,

[तरंगायित संगीत-प्रवाह।]

विष्णु : हे देवगण, बलि तो अंग देश के स्वामी हैं, अगर आप सब उन्हें मनाने में समर्थ हो जाते हैं, तो सभी प्रकार के दुखों से मुक्ति संभव है ।

कई स्वर : हे मधुसूदन, वह कैसे ?

विष्णु : सम्राट बलि को यह समझाना होगा कि अगर सुर और असुर मिलकर मंद्राचल से समुद्र मंथन करें, तो समृद्धियों का सम्पूर्ण संसार उनके चरणों पर होगा। हे देवगण, यही बात देवराज इन्द्र को भी बतानी होगी, ताकि दुर्वासा ऋषि के अभिशाप के कारण उनकी जो समृद्धि जाती रही है, वह उन्हें पुनः प्राप्त हो सके ।

[तरंगायित संगीत-प्रभाव।]

वाचक : विष्णु की मंत्रणा के अनुसार ही असुर और सुरों ने मंदार-मंथन किया था, जिसमें हलाहल निकलने से पहले जीवन को अमरता देने वाला

अमृत निकला था ।

वाचिका : अमृत कोई अलौकिक वस्तु नहीं था । यह तो उन औषधियों का रस था, जो अमृत मंथन के क्रम में देवताओं को प्राप्त हुआ था । असुर उन औषधियों का ही प्रयोग कर इतने बलिष्ठ और पराक्रमी बने हुये थे ।

वाचक : बलिष्ठ ही नहीं, अत्यधिक बुद्धिमान भी । तभी तो उनकी एक समृद्ध नगरी मंद्राचल के आसपास बसी थी, उस समृद्ध नगरी का एक नाम था बालीसा । बालीसा मंद्राचल के वनों में विचरनेवाली एक अपूर्व सुन्दरी थी, जिसके नाम पर नगर का भी नाम पड़ा था ।

वाचक : लेकिन किसी कारण वह अपने रूप को खोकर विरूपा हो गयी थी।

[ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रवाह।]

नटी : बालीसा मन्दार के नीचे चुप-चुप रहती मौन,
यही रात-दिन सोचा करती, अब उसका है कौन ।

नट : पापहरणी के जल से धोती, अपनी काया-देह,
इक दिन देखा, रूप हुआ है—मणि-माणिक का गेह ।

नटी : फिर क्या था, वह विचरण करती हिरणी-सी ज्यों वन में,
पर्वत के कोने-कोने में, जैसे चाँद गगन में ।

नट : इक दिन वह थी पापहरणी के पास रही सुर टेर,
तभी घूमता आ पहुँचा अनचोके वहाँ कुबेर ।

नटी : तो, सुनो सुनने वालो, उसके रूप से विमोहित होकर कुबेर ने पूछा—

[ब्रिज म्यूजिक।]

कुबेर : सुन्दरी, तुम कौन हो, मंदार की स्वामिनी या स्वर्ग की कोई अप्सरा? या फिर मेरी तरह इस पर्वत का सौन्दर्य-पान के लिए यहाँ चली आई हो?

बालीसा : अतिथि, न तो मैं मंदार की स्वामिनी हूँ, न स्वर्ग की ही अप्सरा; मैं तो मंदार की पुत्री हूँ । मेरा नाम बालीसा है । क्या मैं जान सकती हूँ कि आप कौन हैं ?

कुबेर : रूपसी, मैं ऐश्वर्य का देवता कुबेर हूँ । सुना है मंदार पर्वत का स्पर्श ही काया को कंचन करता है । धरती पर ऐसा कौन-सा पर्वत है, जिसके हृदय पर अमृत-कोष विराजता है। धन्य है, यह अंग देश, जहाँ ऐसा पर्वत है ! इसके दर्शन के मोह ने ही मुझे यहाँ तक खींच लाया है।

बालीसा : तो, अतिथि, आपने पर्वत का दर्शन कर लिया ?

कुबेर : अब इसकी इच्छा नहीं रही, क्योंकि मैंने तुम्हारा दर्शन कर लिया है। सुन्दरी, क्या तुम मेरा निवेदन स्वीकार करोगी ?

बालीसा : कैसा निवेदन, अतिथि ?

कुबेर : मैं तुम्हें अपनी प्रिया के रूप में स्वीकारना चाहता हूँ ।

बालीसा : क्या यह उचित होगा, अतिथि ?

कुबेर : मुझे अतिथि न कहो, प्रिये ! प्राणबल्लभ कहो !

बालीसा : प्रिये, मुझे तुम्हारा निवेदन स्वीकार है ।

[संगीत-प्रवाह।]

वाचक : हेमेन्द्र बालीसा और कुबेर की ही सन्तान था, जिसने अपनी माँ के नाम पर मंदार क्षेत्र का नाम बालीसा नगर रखा था ।

वाचिका : बालीसा-कथा में कहीं-कहीं अलौकिकता का रंग अवश्य घुल गया है, पर इस रंग के हटते ही सब कुछ विश्वसनीय हो जाता है ।

वाचक : बालीसा जिस पापहरणी सरोवर के पास विरूप होने के बाद रहा करती थी, वह सरोवर मंद्राचल की दक्षिणी चट्टान की जड़ से सटा हुआ है।

वाचिका : यह सरोवर पापहरणी इसलिए है, क्योंकि इसके जल में शरीर के रोगों को शमन करने की शक्ति थी, है ।

वाचक : बालीसा की काया का कष्ट भी इसी कारण दूर हो गया था ।

वाचिका : और जब गौतम ऋषि की पत्नी के साथ इन्द्र ने छल किया था, तथा ऋषि के कोप के कारण इन्द्र अपने शरीर से अशोभनीय हो उठा था, तब वह मंद्राचल के कुण्डों में स्नान करने के बाद ही अपने शरीर की विरूपता से मुक्त हो पाया था। यह कथा पुराण की है । कथा तो यह भी है कि मंदार पर और इसकी जड़ों पर जितने कुण्ड पाये जाते हैं, वे सुरों-असुरों ने इसलिए बनाए थे कि इन्द्र प्रत्येक दिन अलग-अलग कुण्ड में स्नान कर ऋषि के शाप से मुक्त हो सके ।

वाचक : यह इसलिए भी अविश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मंद्राचल अमूल्य औषधियों का स्वर्ग था, और अमृत उन्हीं औषधियों का रस मात्र ।

वाचिका : पर्वत के पैर पर झील-सी बिछी पापहरणी के औषधीयुक्त जल के महत्व को दर्शाने के लिए पुराण- शैली की कई प्रसिद्ध कथाएँ इस मंदार क्षेत्र में फैली हुई हैं ।

[ढोल-मृदंग की ध्वनि।]

नट : सुनो कथा शूकर की, संग में पापहरणी के बल को,
हिला सका ना समय आज तक, जिसकी प्रभा अटल को ।

नटी : एक बार व्याधे के डर से शूकर सरपट धाया,
पापहरणी के गहरे जल में डूबा, उबर न पाया ।

नट : जब ऊपर आया, तो उसका रूप नया था, नर का,
एक अनूठा रूप लिए था, अद्‌भुत राजकुँअर का ।

नटी : और स्वर्ग से आया लेने पुष्प सुसज्जित यान,
बैठा राजकुँअर वह पहुँचा स्वर्गलोक-सुरधाम ।
[ढोल-मृदंग की ध्वनि।]

वाचक : धन्वन्तरी को औषध पुरुष कहा गया है, और वह समुद्र-मंथन के चौदह रत्नों में तेरहवें रत्न थे ।

वाचिका : धन्वन्तरी मंद्राचल पर निवास करनेवाले और औषधियों के ज्ञाता पुरुष थे ।

वाचक : धन्वन्तरी को अंग देश के राजा रोमपाद के कुलगुरु दीर्घतमा ऋषि का पुत्र भी कहा गया है और दिवोदास को धन्वन्तरी का पौत्र ।

वाचिका : दिवोदास भी अपने दादा की तरह आयुर्वेद के महान ज्ञाता हुए, जो अपने दादा के साथ ही मंद्राचल पर निवास करते थे ।

वाचक : समुद्र-मंथन के चौदह रत्नों में चन्द्रमा और लक्ष्मी के नाम आते हैं।

वाचिका : चन्द्रमा अत्रि ऋषि का पुत्र था और अत्रि ऋषि का निवास स्थान प्रयाग कहा गया है ।

वाचक : चूँकि सुराधिपति इन्द्र चन्द्रमा के गुरु ही नहीं, अभिन्न मित्र भी थे, इसी से चन्द्रमा को धन्वन्तरि से आयुर्वेद के ज्ञान का सुअवसर प्राप्त हो सका । जब चन्द्रमा मंद्राचल आया, तो स्थायी रूप से वह यहीं बस गया ।

वाचिका : इसी से चन्द्रमा को मंदार-मंथन के चौदह रत्नों में ही गिना गया है। चूँकि चन्द्रमा ज्योतिष और नक्षत्र विद्या का प्रकाण्ड विद्वान था, इसी से चौदह रत्नों में चन्द्रमा का एक होना स्वाभाविक ही था ।

वाचक : समुद्र-मंथन की कथा बहुत कुछ मंद्राचल, इसके भूगोल और यहाँ पर हुये सांस्कृतिक समन्वय का ही इतिहास है ।

वाचिका : असुरों की राजधानी मंद्राचल की चीर नदी अर्थात क्षीर नदी के निकट आकर विष्णु स्थायी रूप से बस गये थे । कहा तो यह भी जाता है कि मंदार के तल की पूर्वी चट्टान पर बहनेवाली दुधिया धार ही वह

क्षीर नदी है, जहाँ विष्णु शेषशायी रहते थे । विष्णु के साथ लक्ष्मी का विवाह हुआ था, जिसका जन्म समुद्र से हुआ था ।

वाचक : लक्ष्मी भी मंद्राचल की बेटी है, रूप और ऐश्वर्य की देवी और जब मंदार की इस पुत्री को विष्णु ने पत्नी रूप में स्वीकार किया, तो वह चौदह रत्नों में एक रत्न बन गयी, मुझे तो यही लगता है ।

वाचिका : मंद्राचल के दक्षिण पाद पर पूर्व से पश्चिम की ओर फैली पापहरणी के जल पर जितनी लहरें नहीं उठतीं, उससे अधिक इसके हृदय पर मंद्राचल की छवियाँ उभरती हैं ।

वाचक : पापहरणी के पाप विनाशक जल की जानकारी पुराण काल के लोगों को ही नहीं थी, इसका महत्व आधुनिक काल तक सुरक्षित रहा ।

वाचिका : इतिहास कहता है कि दक्षिण भारत के चोलवंशी राजा छत्रसेन का कुष्ठ रोग इसी पापहरणी सरोवर में स्नान करने से दूर हो गया था, और रोगमुक्त होने पर छत्रसेन ने इस सरोवर को बड़ा आकार दिया।

वाचक : लेकिन इतिहासकार राखाल दास बनर्जी ने लिखा है कि सरोवर को यह विस्तृत आकार आदित्यसेन की पत्नी कोण देवी ने ईसवी सन् सात की शताब्दी में दिया था ।

वाचिका : पापहरणी सरोवर के पूर्वी छोर पर पत्थर की सीढ़ियाँ निर्मित हैं । कभी इसी पूर्वी छोर पर पापहरणी देवी की मूर्ति हुआ करती थी, जो अब भग्नावशेष रूप में ही प्राप्त है ।

वाचक : पापहरणी आज भी अमृत प्राप्ति की कथा कहती मनोहर कुण्ड की तरह फैली हुई है ।

निदेशक : छाँव यह मन्दार की ।

पुण्य देती पापहरणी
इन्द्रधनु-सी पुष्पवर्णी,
सलिल निर्मल—छन्द दोहा
लहर जिसकी है—शिखरनी;
ज्यों निधि संसार की ।
छाँव यह मन्दार की ।
[संगीत-प्रवाह ।]

वाचिका : कलियुग में सत्युग का सुख देनेवाली पापहरणी का सौभाग्य मकर संक्रान्ति के काल में देखते ही बनता है ।

वाचक : इसमें पवित्र स्थान के बाद अतिथि और तीर्थयात्री मंद्राचल के शिखर के स्वर्ग तक सदेह पहुँचने के लिए प्रस्थान करते हैं ।

वाचिका : पापहरणी के उत्तरी छोर से कुछ पूर्व हटकर, मंद्राचल के शिखर तक पहुँचने का एक मुख्य मार्ग बना हुआ है। यानि चट्टानों पर खुदी हुईं सीढ़ियाँ।

वाचक : ये सीढ़ियाँ उठती गयी हैं, पर्वत के मध्य भाग तक । तीन सौ से कुछ अधिक ही हैं इसमें पदधारक । जहाँ आखिरी सीढ़ी समाप्त होती हैं, वही है नरसिंह भगवान का गुफा-मंदिर ।

वाचिका : 'बिहार दर्पण' के लेखक पं. गदाधर अम्बष्ठ के अनुसार, चट्टानों को काट कर बनाई गई यह सीढ़ियाँ उग्र भैरव नाम के एक राजा ने बनवाई थीं ।

वाचक : सीढ़ी पर कदम रखते ही पर्वत की दायीं ओर चट्टानों पर उकेरी गयी मूर्तियाँ और भी स्पष्ट रूप में प्रकट होने लगती हैं ।

वाचिका : सबसे पहले आठ भुजाओं वाली काली की प्रस्तर मूर्ति, फिर सूर्य स्तम्भ, और सूर्य स्तम्भ के ही कुछ ऊपर, तीन मुख के साथ आठ भुजाओं के महाकाल भैरव की विशाल मूर्ति ।

वाचक : महाकाल भैरव के ही कुछ ऊपर उठकर छोटी-सी गणेश की मूर्ति है, और गणेश से कुछ ही ऊपर चट्टान पर खुदी सरस्वती की छोटी-सी मूर्ति।

वाचिका : इसी प्रस्तर मूर्ति के आगे हैं--समान्तर रूप से पर्वत को घेरती और लगभग चार हाथों की दूरी बनाए चलती रेखाएँ, जिन रेखाओं की चौड़ाई भी एक फीट से कम नहीं है ।

वाचक : लोक विश्वास है कि ये रेखाएँ वासुकी नाग की हैं, जिससे मंद्राचल को बाँधा गया था,

[ढोल-मृदंग की ध्वनियाँ।]

नट : नाग बासुकी से बाँधा तब मंद्राचल को सबने,
पूछ धरे सुर, फन असुरों ने, सागर लगे वे मथने ।

नटी : बार-बार के फुफकारों से निकल रही थी आग,
नाग बासुकी के घर्षण से गिरि पर पड़ गये दाग ।

[ढोल-मृदंग की ध्वनियाँ।]

वाचिका : आज भी लोकविश्वास ऐसा ही है, लेकिन लगता तो यही है कि नरेश उग्र भैरव ने ही ये रेखाएँ भी प्रतीक रूप में खुदवाई होंगी, जो रेखाएँ

पर्वत को पूरी तरह से घेरती भी नहीं हैं ।

वाचक : जहाँ तक मंदार मंथन के साथ बासुकी नाग की कथा का संबंध है, उसे पुराणों के इतिहास कथन की शैली से बाहर निकाल कर देखें, तो यह इतिहास सम्मत ही लगता है।

वाचिका : अंग प्रदेश के दक्षिणी भाग पर नागवंशी राजाओं का आधिपत्य रहा है। हालाँकि इतिहास नागवंशी राजाओं के अति प्राचीन अंश पर शंका ही प्रकट करता है, लेकिन नागवंशियों का प्राचीन इतिहास पुराणों में भी सुरक्षित है ।

वाचक : ये नागवंशी सुरों और असुरों से आत्मीय संबंध रखते थे, इसी से जब मंद्राचल को मथनी बना कर सागर-मंथन की संधि हुई, तब दारुका वन के नागवंशी राजा बासुकी ने भी इस अभियान में भारी मदद की होगी।

वाचिका : यह दारुका वन वर्त्तमान में झारखण्ड का देवघर जिला है, जिसे मंदार क्षेत्र ही कहा गया है। देवताओं का साथ देने के कारण नागवंशी बासुकी की प्रतिष्ठा स्वयं ही बढ़ती गयी होगी, और वह असुरों के साथ सुरों के भी पूज्य हो गये थे ।

वाचक : मंद्राचल के हृदयप्रदेश पर अंकित की गईं ये सर्प रेखाएँ प्रतीक में इसी इतिहास को कहती रेखाएँ हैं ।

वाचिका : वासुकी नाग की इन रेखाओं के कुछ और ऊपर, आरोहण-मार्ग की बायीं ओर ही एक ध्वस्त भवन के अतिरिक्त एक दूसरा भी ध्वस्त भवन है, जो यहाँ के लोगों में त्रिशिरा मन्दिर के नाम से विख्यात है ।

वाचक : इसी स्थल पर तीन मुँह की एक विशाल मूर्ति खण्डित अवस्था में है। यह मूर्ति महाकाल भैरव की है ।

वाचिका : त्रिशिरा मंदिर से पर्वत के आगे का मार्ग ढालुवा होने के कारण काफी भयावह है ।

वाचक : लेकिन यात्रियों की सुरक्षा के लिए, इसी जगह पर, चट्टानों को छीलकर जो सीढ़ियाँ बनाई गयी हैं, वे कलात्मक भी हैं । सीढ़ी में धापों की संख्या डेढ़ सौ से कुछ अधिक ही है ।

वाचक : सीढ़ी के इस मार्ग से ऊपर उठने पर, सीढ़ी के पूरब यानी दायीं ओर ही प्राचीन शिलालेख मिलते हैं, जो समय की मार से अब घिसे रूप में प्राप्त हैं ।

वाचिका : शिलालेखों के ऊपर ही फिर आठ भुजाओं वाली सरस्वती की प्रस्तर मूर्ति अचानक ही आँखों को अपनी ओर खींच लेती है, जो सीढ़ी से ही सटी हुई है । आज भले ही इस अष्ठभुजा सरस्वती का एक ही मुँह शेष रह गया है, लेकिन कभी यह तीन मुँह की ही प्रस्तर प्रतिमा थी । चट्टान पर शेष बचे चिन्हों से इसके अतीत को जाना जा सकता है।

वाचक : ठीक, मूर्ति से आगे बढ़ने पर मुख्य रास्ता विभाजित होकर दो भागों में बँट जाता है । एक मार्ग तो सीताकुण्ड के दक्षिण से होते हुए नरसिंह गुफा-मंदिर की ओर निकल जाता है,

वाचिका : और दूसरा भाग सीताकुण्ड के पूरब से होते हुए तथा शंखकुण्ड को देखते हुए नरसिंह गुफामंदिर तक पहुँच गया है ।

वाचक : लोकविश्वास है कि अपने भाई के वधिक विष्णु से बदला लेने के लिए, अपनी माँ दिति के कहने पर हिरण्यकशिपु ने मंद्राचल पर ही सौ वर्षों की घोर तपस्या की थी, और ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष होकर उसे वरदान भी दिया था।

वाचिका : लेकिन जब नरसिंह के हाथों उसका वध हुआ, तो उस खुशी में बालिसा के देवताओं ने मंदार की गुफा में नरसिंह की मूर्ति बनवाई। यह गुफा अपनी ऊँचाई से इस लायक तो नहीं कि भक्त खड़े होकर मूर्ति की पूजा-अर्चणा कर सके, पर बैठ कर कई भक्त एक साथ भजन-कीर्त्तन कर सकते हैं ।

वाचक : इसी नरसिंह गुफामंदिर में प्राचीन अंग लिपि का एक शिलालेख भी मिलता है । यह गुफामन्दिर सीताकुण्ड से ठीक पश्चिमोत्तर भाग में अवस्थित है ।

वाचक : नरसिंह गुफामंदिर के निकट ही वामन भगवान की एक बड़ी प्रस्तर मूर्ति भी अपनी ओर लोगों की खींचती है, और इसी मूर्ति के ऊपर, पूर्व दिशा में, एक विशाल मूर्ति चट्टान पर खुदी है, जो असुरराज मधु का मस्तक है । यह ठीक आकाशगंगा कुण्ड के निकट ही है ।

वाचिका : नरसिंह गुफामंदिर के निकट ही कभी खुदाई में विष्णु, वाराह और मधुसूदन की आकर्षक मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं । इसी स्थल पर वह 'गयाकुण्ड' भी है, जिसके सम्बन्ध में यह धार्मिक मान्यता है कि अपने पिता दशरथ के निधन पर भगवान राम ने, मंदार-प्रवास के क्रम में, इसी कुण्ड में पिण्डदान किया था । धार्मिक मान्यता तो यह भी

है कि श्रवण कुमार की हत्या करने के कारण दशरथ का पाप कुछ ऐसा प्रबल हो गया था कि उसका शमन, पवित्र मंद्राचल पर पिण्डदान से ही संभव हुआ था।

वाचक : अतीत में यह कुण्ड पिण्डदान का प्रमुख क्षेत्र था ।

वाचिका : पर्वत पर कुण्ड तो कई हैं, लेकिन इनमें आकाशगंगा, शंखकुण्ड और सीताकुण्ड ही प्रमुख हैं । सीताकुण्ड को ही बालिसावासी क्षीरसागर कुण्ड भी कहते हैं । इनका विश्वास है कि सीताकुण्ड के उत्तर में शेषशायी विष्णु निवास करते हैं ।

वाचक : इसी लोकविश्वास के कारण इसे चक्रावर्तकुण्ड भी कहा जाता है । यह भी मान्यता है कि मंदार-प्रवास के क्रम में सीता इसी कुण्ड में स्नान करती थी, इसी से यह सीताकुण्ड के नाम से ही जाना जाता है ।

वाचिका : शंखकुण्ड सीताकुण्ड से ऊपर उत्तर की ओर है, और शंखकुण्ड की ओर से सीताकुण्ड में उतरने के लिए दो जगह सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुण्ड की दीवार पर अंकित प्रस्तर मूर्तियाँ कुण्ड को गरिमा प्रदान करती हैं ।

वाचक : शंखकुण्ड से ही पर्वत-शिखर पर पहुँचने के लिए दो मार्ग खुलते हैं। एक विश्वनाथ मंदिर की ओर से होकर,

वाचिका : और दूसरा कामाख्याकुण्ड की ओर से । दोनों ही रास्तें कुछ आगे बढ़कर एक हो जाते हैं । यह संयुक्त मार्ग ही पर्वत के शिखर तक उठता गया है ।

वाचक : शंखकुण्ड के ऊपर, जहाँ मुख्य मार्ग विभाजित होता है, उसके बीच की खाई में सौभाग्यकुण्ड और शिवकुण्ड अवस्थित हैं, लेकिन इनमें सौभाग्य कुण्ड ही लोक के बीच अधिक प्रसिद्ध है ।

वाचिका : लोकप्रसिद्ध है कि सौभाग्यकुण्ड ब्रह्मा के अष्टदल कमल पर स्थित है, शिवकुण्ड सौभाग्यकुण्ड से कुछ ऊपर है, जिसके ही दक्षिण-पश्चिम की ओर सदाशिव का विश्वनाथ मंदिर है । पूरी तरह पत्थर से निर्मित मंदिर, जिसके अन्दर सदाशिव की लिंग वाली प्रतिमा स्थापित है ।

वाचक : मंदिर, विश्वनाथ मंदिर और स्थापित शिवलिंग के संबंध में पुरा कथाएँ कहती हैं कि मंदारवासी धन्वन्तरि के पौत्र दिवोदास, जो स्वयं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान थे, एक बार काशी पहुँचे ।

[दृश्यांतर।]

दिवोदास : अद्‌भुत, धरती पर सचमुच स्वर्ग है यह, काशी राज्य । काश, मैं काशी का नरेश होता!

एक स्वर : (प्रतिध्वनित होते स्वर में) दिवोदास, यह तो बिल्कुल असंभव है । जिसकी कोई संभावना नहीं, उसकी कोई कल्पना ही क्यों ?

दिवोदास : मैं इस असंभव को भी संभव बनाऊँगा । अपनी घोर तपस्या से मैं भगवान विश्वनाथ से यह वर प्राप्त कर के ही रहूँगा ।

[ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रभाव।]

नटी : फिर तो दिवोदास ने कर दी घोर तपस्या जारी,
काँप उठे तब सुर-मुनि तक ही, फिर क्या ये संसारी ।

नट : विश्वनाथ तब नंगे पाँवों दिवोदास तक आए,
और कहा उससे कि अपनी इच्छा अभी बताए ।

नटी : हर्षित होकर दिवोदास ने किया निवेदन उनसे,
काशी का नृप होऊँ, वर दें, कम कुछ जरा न इससे ।

नट : रह ना सके चुप विश्वनाथ जी, सब सुनकर यह बोले,
दिवोदास, पूरी इच्छा हो, काशीनृप भी हो ले ।
लेकिन मुझसे कहो, कहाँ है, जैसा कि मंद्राचल,
धरती पर वह स्वर्ग विमल है, कमलों में ज्यों शतदल ।

नटी : और लौटकर विश्वनाथ ने फिर तो मंद्राचल पर,
शिवलिंग के संग नींव रखी थी मंदिर की भी, ऊपर ।

नट : मंद्राचल पर उतर गई निधियाँ काशी की सारी,
मंद्राचल काशी बन बैठा, तेज बढ़ा फिर भारी ।

[ढोल-मृदंग का ध्वनि-प्रभाव।]

वाचिका : दिवोदास के हाथों स्थापित मंद्राचल पर इस विश्वनाथ मंदिर के निकट ही कभी धारापतन नाम का प्रसिद्ध तीर्थ था, जो अब जलविहीन होकर विलुप्त हो गया है । यह सौभाग्य कुण्ड से दक्षिण की ओर अवस्थित था ।

वाचक : पर्वत-शिखर पर पहुँचने के क्रम में जाने कितनी प्रस्तर मूर्तियाँ, जाने कितने कुण्ड मिलते चले जाते हैं, जिनमें वृद्ध नरसिंह की मूर्ति और गोदावरी कुण्ड प्रमुख हैं । गुफाएँ भी मिलती हैं ।

वाचिका : गोदावरी कुण्ड से ऊपर आने पर, रास्ते में दक्षिण-पश्चिम की ओर, शुकदेव मुनि का गुफाश्रम है, जहाँ तक पहुँचने का मार्ग दुर्गम और

भयावह है । कहते हैं, मंद्राचल पर ऐसी कई गुफाएँ हैं, जो विभिन्न मुनियों के आश्रम रही हैं ।

वाचक : आधुनिक युग के महान महर्षि भूपेन्द्रनाथ सन्याल अपने एक संस्मरण में कहते हैं,

[ब्रिज म्यूजिक।]

सन्याल : मैंने अपने ध्यान में एक पर्वत देखा, जिस पर असंख्य साधु-संन्यासी विचरण कर रहे थे, लेकिन उनमें मेरे गुरुदेव पूज्य श्री श्यामा चरण लाहिड़ी नहीं थे । यह देख मैं चंचल हो उठा, कि तभी मंदार के शिखर पर मेरे गुरुदेव दिखाई पड़े, जो मुझे अपने पास आने का संकेत कर रहे थे । पर्वत को ध्यान में बसाए जब मैं बालीसा नगर पहुँचा, तो मैंने पाया कि अपने ध्यान में मैंने जिस पर्वत और पर्वत पर अपने गुरुदेव को देखा था, वह यही बालिसा का मंदार पर्वत है ।

[संगीत।]

वाचिका : मंद्राचल पर बनी गुफाएँ, समय के प्रवाह में कुछ तो शेष हो गयी हैं, और कुछ दुर्गम स्थलों पर होने के कारण आँखों से ओझल हैं ।

वाचक : शुकदेव गुफा से ऊपर, उत्तर की दिशा में बढ़ने पर, मार्ग में मन्दिर के भग्नावशेष के साथ-साथ विष्णु और नरसिंह की मूर्तियों के अतिरिक्त एक शिवलिंग भी प्राप्त होता है । ये मूर्तियाँ, शिखर की ओर बढ़ने के मार्ग में, बायीं ओर मिलती हैं ।

वाचिका : इसके बाद फिर वहीं ईटों-पत्थरों का ढूह और एक उपेक्षित शिव मन्दिर। मंदिर के पास से ही दो रास्ते शिखर मंदिरों की ओर निकलते हैं ।

वाचक : एक रास्ता पर्वत शिखर के मुख्य और बड़े मन्दिर के पास जा कर शेष होता है, और दूसरा सीधे पूर्व की ओर जाते हुए शिखर के छोटे मन्दिर के पास पहुँच गया है । पूर्व की ओर बढ़ती इसी दूसरी राह की बायीं ओर कलियुग की मूर्ति का अवशेष भी अवस्थित है ।

वाचिका : ईटों-पत्थरों के बीच कलियुग की यह मूर्ति जब दिखाई पड़ती थी, तब इसके कंधे पर इसकी पत्नी और इसके हाथ से घिसटती इसकी माँ दिखती थी । घृणा व्यक्त करने के लिए यात्री इस मूर्ति पर ईंट-पत्थर फेंकते रहे, और अब तो यह मूर्ति उन्हीं ईटों-पत्थरों के बीच गुम हो गयी है ।

वाचक : कलियुग की यह मूर्ति जिस जगह अस्तित्वविहीन होती है, ठीक वहीं

पर, अभी भी एक कुण्ड को पहचाना जा सकता है, जिसे बालीसावासी बाराह कुण्ड के नाम से जानते हैं । कभी कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को इस कुण्ड में पुण्य स्नान करने की धार्मिक प्रथा थी ।

वाचिका : ग्रीष्मकाल के लिए प्रकृति ने मंदार पर एक बड़ी चट्टान की छतरी भी बना रखी है, जो योगमठ के नाम से विख्यात है । यह वाराहकुण्ड से कुछ पूर्व हट कर है । यहाँ से लौटकर भक्त सीधे शिखर के छोटे मंदिर तक पहुँचते हैं ।

वाचक : लोक के बीच यह छोटा मंदिर लक्ष्मी मंदिर के ही नाम से प्रसिद्ध है, जिसके भीतरी कक्ष में छः चरण-चिन्ह हैं । वैष्णव मतालम्बी इन चरणों को विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती के चरण-चिन्ह मानकर पूजा करते हैं। इतिहासकार बुकनन की डायरी में इसका उल्लेख है ।

वाचक : इस लक्ष्मी मंदिर के निकट ही एक छोटा-सा लक्ष्मीकुण्ड भी विराजता है, और इसी मंदिर से उत्तर, शिखर पर वह बड़ा मन्दिर अवस्थित है।

वाचिका : लगभग छः फीट मोटी दीवारों के इस बड़े मन्दिर के भीतर एक बड़ी वेदी पर दो चरण चिन्ह हैं । मंदिर का स्थापत्य शिल्प अद्‌भुत है । गुम्बद है, तो यह भी आन्तरिक और बाह्य गुम्बदों से गठित । गुम्बद के बीच प्रवेश का एक रास्ता भी उत्तर की ओर से बना हुआ है ।

वाचक : इतिहास कहता है कि गुम्बद का आन्तरिक भाग कभी कीमती धातुओं और पत्थरों से सम्पन्न था, जिसे अपराधियों ने, गुम्बद को काटकर, निकाल लिया था। गुम्बद में बना रास्ता दरअसल अपराधियों द्वारा काटा गया भाग ही है ।

वाचिका : जो हो, पर्वत-शिखर का यह विशाल मंदिर कभी भगवान मधुसूदन का मंदिर था, जहाँ इनकी प्रतिमा की पूजा अर्चना होती थी । इतिहासकार बुकनन ने अपनी डायरी में इसका भी स्पष्ट उल्लेख किया है ।

वाचक : काला पहाड़ के आक्रमण के समय मधुसूदन की प्रतिमा को शिखर-मंदिर से निकालकर नीचे ले आया गया, और वहाँ मात्र विष्णु के चरणों की पूजा ही प्रथा में रह गयी। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य कुमारसंभवम् के अष्टम सर्ग में मंद्राचल को भगवान विष्णु के चरणों से विभूषित पर्वत के रूप में ही देखा है ।

एक स्वर : ''पद्मनाभचरणाङ्किताश्मसु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रषोनवाः ।
मंदरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदनपद्मषट्पदः ।।

वाचिका : जैन मतावलम्बी शिखर मंदिर के इन चिन्हों को बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के चरण-चिन्ह के रूप में स्वीकारते हैं, और पूजते हैं । उनका यह भी मानना है कि वासुपूज्य का निर्वाण इसी पर्वत-शिखर पर हुआ था। वैसे इतिहास के अनुसार वासुपूज्य का जन्म और निर्वाण भागलपुर की चम्पा में ही हुआ था । चम्पा में प्राप्त चिन्ह इसके प्रमाण हैं ।

वाचक : मंदार पर्वत जितना वैष्णवों को प्रिय है और जितना जैनों को, उतना ही यह महत्वपूर्ण है, आदिवासियों के लिए भी। मंदार का सारा सौभाग्य मकर संक्रान्ति के दिन सचमुच संधीभूत हो जाता है, जब सफाधर्म के गृहस्थ और वैरागी योगियों की भीड़ पर्वत पर एकत्रित हो जाती है । आदिवासियों के मादल और वंशी के साथ आदिवासी गीत हवाओं में तैरते हुए शिखर को घेरने लगते हैं ।

[आदिवासी संगीत-गीत उभरता है।]

गातेञ तिरयोय ओरोंग मंदार बुरु रे
इञ दोञ नातेन बाड़ाय दाकूलो घाट रे ।
कान्डांग बागीयाक् रेमा होड़को ञेलेञ कान,
बाञ सेनोक् रेमा गातेञ ए रुहादीञ ।
होड़ रोड़ दोरेञ सहाव गेया रे
गातेञ नेगेर दों तोहोञ सहावले ।।

निदेशक : मंदार पर्वत पर मेरा प्रिय बाँसुरी बजा रहा है । जिसे मैं पनघट से सुन रही हूँ । अगर मैं पनघट पर ही घड़े को छोड़ कर वहाँ जाती हूँ, तो लोग मुझे देख ही लेंगे और फिर मेरी निंदा ही होगी । और अगर प्रिय के पास नहीं जाती हूँ, तो वह नाराज हो जायेंगे । ऐसे में, लोगों की निन्दा को तो मैं सह लूँगी, परन्तु प्रिय की नाराजगी को मैं कैसे सह सकूँगी।

वाचिका : तब मंद्राचल के दक्षिण-पूर्व में इसकी जड़ से सटे शेषशायी भगवान विष्णु की प्रतिमा, जैसे, जाग उठती है, विष्णु के ऊपर कई फन फैलाए शेषनाग कोमल पड़ जाता है और पर्वत के पूर्व में स्थित ध्वस्त लखदीपा मन्दिर में लाखों दीप, जैसे, फिर से एक बार प्रदीप्त हो उठते हैं, बालिसा नगरी के एक-एक लाख घरों से आये प्रज्जवलित दीप।

[आदिवासी संगीत और गीत।]

वाचिका : बालीसा की सारी दिशाओं में बस यही उमंग, यही निवेदन, यही राग गूँजता रहता है ।

नारी स्वर : हेगे बहिनिया पिन्हें पैजनियाँ
देखै लें जैवै मनार गे ।
लाले लाल टिकुली, लाले लाल चूड़िया
लाले लाल सेनुरा, लाले लाल सड़िया
लाले लाल झुमका, नकबेसर बढ़िया
लाले लाल भोर भिनसार गे ।
देखै लें जैबै मनार गे ।
विष्णु जी ऐलै, ब्रह्मा जी ऐलै
यही पहाड़ों सें सागर मथैलै
अमृत निकललै, रतन निकललै
देवों के बेड़ा भेलै पार गे
देखै लें जैबै मनार गे ।

वाचक : मकर संक्रान्ति के दिन, कभी मंद्राचल के बड़े शिखर मंदिर में स्थापित मधुसूदन भगवान को, पर्वत के पूर्व में बने पुराने मंदिर में लाया जाता है, शाही सवारी के साथ ।

[हाथी के चिग्घाड़ने, जयकारों का निनाद, घड़ीघंट-शंख की ध्वनियाँ।]

वाचक : उन क्षणों में मंद्राचल का रोम-रोम पारिजात वन की तरह स्पन्दित हो उठता है । ठीक उसी तरह, जब अमृत कुंभ की प्राप्ति और उसकी स्मृति में पहली बार भारतवर्ष में कुंभ मेला लगा होगा । यह आश्चर्यजनक नहीं कि मंदार भूमि पर मकर संक्रान्ति में उमड़ने वाली भीड़ उसी प्रथम कुंभ मेले का प्रतीक हो, आदि कुंभ पर्व का प्रतीक रूप, जैसे, सागर झील रूप में यहाँ बच, गया होगा ।

वाचिका : लेकिन झील सागर तो नहीं है, यही कारण है कि उमंग और राग के बीच कहीं एक कोने में मंदार की सिसकियाँ भी उभरती रहती हैं, जो पर्वत के भीतर-ही-भीतर गूंजती हैं।

वाचक : मंदार पूछता रहता है, अपने कुण्डों से, अपने सरोवरों से, अपनी गुफाओं से, अपने मन्दिरों और आसपास उग आए झाड़ियों-काँटों के जंगल से।

वाचिका : कि कहाँ गये मेरे चारों ओर खड़े और मुझसे बराबरी करते वे जंगल,

जो कभी भृष्टराज वन मालूर वन, माधव वन, भारती वन, और रेणुका वन बदरी वन, कमला वन के नाम से विख्यात थे ।

वाचक : केतकी, चम्पा, मालती, मौलश्री की सुगंध के साथ हजारों किस्म की औषधियों का फैला साम्राज्य ।

वाचिका : मंदार पूछता है, आखिर मेरे नीचे उत्तर से पूरब तक फैला नगाड़ा सरोवर मेरी तरह बृद्ध क्यों हो गया? जिसने समुद्र मंथन के समय भी अपने ऊपर से अमृत को बहते देखा है, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सुरक्षागृह की भूमिका निभाई है, अब इसके जल पर, शिशिर ऋतु में भी क्यों नहीं सात सागर को पार करती आती हैं, चिड़ियों के हजार-हजार झुण्ड । मंदार उदास है कि अतीत के बचे-खुचे वनों की स्मृतियों की जगह कहीं कंकरीट के जंगल न उग जाएँ, अब।

[एक उदास संगीत बिखरता है।]

[समाप्ति संगीत।]

सखि, वसन्त आया

[सुग्गे और मैंने की मिली-जुली आवाजें; फिर अचानक ही कोयल की तेज कुहुक।]

वाचक : कोयल की कुहुक, यानि वसन्त का यौवन-काल। वसन्त की मादकता की गंध पा कर कोयल ही नहीं, सुग्गों के साथ हारिल और पपीहे की कंठ-नलिकाएँ भी संगीतमय हो उठती हैं।

[विभिन्न चिड़ियों के स्वर।]

वाचिका : लेकिन वसन्त के उल्लास का पता तो कोकिल की मदबृद्धि से ही पूरा-पूरा मिलता है।

[कोयल की तेज कुहुक।]

वाचक : यूँ तो वसन्त, हर वर्ष की तरह, वर्ष के चैत माह में प्रकट होता है, लेकिन उसके आने की आहटें तो कुछ पूर्व से ही मिलने लगती हैं ।

वाचिका : तभी तो सरस्वती का आराधना-काल ही वसन्त पंचमी के नाम से जाना जाता है । क्या पता, तब ही ऋतुराज के कानों में, दक्षिण से आनेवाली हवा के कंगन की हल्की-हल्की आवाजें मिलने लगती हों।

वाचक : तभी तो, इसी काल से कुन्द के वृक्ष, अपने पुष्पों के अलंकार को गिरा कर, वनवासी राम की तरह दिखने के लिए उत्सुक हो उठते हैं ।

वाचिका : लेकिन दूसरे पुष्पों के वृक्ष तो मेले में जाने के लिए उत्सुक बच्चों की तरह दिखने लगते हैं, बच्चे, जो पेटियों में बंद पोशाकों की कल्पना कर ही मुग्ध हो उठते हैं ।

वाचक : और शीघ्र ही आने वाले वसन्त की कल्पना में कोकिल के कंठ मन-ही-मन गुनगुना उठते हैं; भले ही कंठ का झूमर किसी को न सुनाई पड़े।

वाचिका : और भले ही वसन्त के शैशव का अनुभव तब दक्षिण दिशा से आनेवाली

हवा को ना लगे, लेकिन शिशिर ऋतु की सखा, यानी उत्तर और पश्चिम से आनेवाली हवाएँ, शीघ्र ही विजय-अभियान के लिए उठनेवाले दक्षिणी पवन के अभिनन्दन में, अपने शीत की प्रचण्डता को छोड़ने के लिए विवश हो उठती हैं ।

वाचक : संस्कृत साहित्य में वसन्त ऋतु की सखा, दक्षिण दिशा से उठनेवाले इस पवन के वर्णन में कहा गया है,

निदेशक : धुन्वंल्लङ्कावनालीर्मुहुरलकलता लासयन्केरलीना-
मन्ध्रीधम्मिल्लवन्धान्सपदि शिथिलयन्वेल्लयन्नागवल्लीः ।
उद्दामं दाक्षिणात्यो मलितमलयजः सारथिर्मीनकेतोः
प्राप्तः सीमन्तिनीनां मधुसमयसुहृन्मानचौरः समीरः ।।

वाचिका : अर्थात लंका नगरी के उद्यानों को हिलाती-डुलाती, केरल कामिनियों की केश लताओं को नचाती, आन्ध की रमणियों के केशपाशों को शिथिल करती, नागवल्ली की लताओं को चंचल करती, कामदेव के विजय-यान की सूचक, स्त्रियों का मान मर्दन करती, वसन्त ऋतु की अभिन्न सखा, दक्षिण दिशा की वायु बहने लगी है ।

वाचक : संस्कृत में वर्णित वसन्त वायु का यह रूप कवि विद्यापति के वसन्त गीत में जागृत है,

निदेशक : [पाठ की लय में गीत।]

आएल ऋतुपति राज वसन्त ।
धाओल अलिकुल माधवि संग।।
दिनकर किरण भेल पैयगन्ड ।
केशर कुसुम धयल हेमदण्ड ।।
नृप आसन नव पीठल पात ।
काँचन कुसुम छत्र धरु माथ ।।
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय ।
मुखहि कोकिल पंचम गाव ।।
सखिकुल नाचत अलि कुलजन्त्र।
द्विजकुल-आन पढ़ आसिख मन्त्र ।।
चन्द्रातप उड़े कुसुम-पराग ।
मलय पवन सह भेल अनुराग।।
कुन्दवल्ली तरु धएल निसान ।
पाटल तूण असोक दल वान ।।

किंसुक लवंगलता एक संग ।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग ।।
नैन साजल मधुमखिका कुल ।
सिसिरक सबहु कएल निरमुल ।।
उधारल सरसिज पाओल प्राण ।
निज नवदले करु आसन दान ।।

निदेशक : जब ऋतुराज वसन्त प्रकट रूप में सम्मुख होता है, तब सभी दिशाओं में ही वसन्त के वैभव का गुणगान आरम्भ हो जाता है।

[चिड़ियों की आवाजें।]

निदेशक : सखि, वसन्त आया
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया ।
किसलय-वसना नव-वय लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका
मधुर वृन्द बन्दी
पिक-स्वर नभ-सर-साया ।

[चिड़ियों की आवाजें।]

वाचक : महाकवि निराला के इस वसन्त गीत में वसन्त जैसे अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य को ही समेट कर खड़ा है ।

वाचिका : ऋतुपति वसन्त की शोभा ही कुछ ऐसी होती है कि कोई भी कवि हो, किसी काल का कवि हो, किसी भाषा का कवि हो, इसके रूप की छटा से सभी उन्मत्त हुये हैं ।

वाचक : खासकर तब, जब वसन्त की शोभा धरती से आकाश तक बिछ गई हो,

[गीत।]

निदेशक : कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है ।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौनहू में
पानन में पिक में पलासन पगंत है ।
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरो बसन्त है ।

वाचिका : फागुन समाप्त भी नहीं हुआ कि वसन्त एकदम दुल्हे के भेष में, चैत के मण्डप में आ खड़ा हुआ।

[गीत, पाठ रूप में।]

निदेशक : दुल्हा राजा वसन्त ।
रामे रङ पैलें छै शोभा अनन्त
दुल्हा राजा वसन्त ।
पुरलों छै केकरों मनो रों मनौती
पिन्ही कें सहजन के फूलों के मोती
महुआ के माला में शोभै की कंत !
दुल्हा राजा वसन्त ।
राखनें छै माथा पर मंजर के मोरी
ससरै छै सोना रों रेशम पटोरी
ऐलों छै चढ़ी कें जे दखनाहा रन्थ ।
दुल्हा राजा वसन्त ।
देखी मूँ लट्टू छै मौगी नै, मरदो
चन्दन सन लागै छै रस्ता के गरदो
आपनों मन बान्है में लागलों छै सन्त ।
दुल्हा राजा वसन्त ।

वाचक : सचमुच में वसन्त का वैभव फूटते ही, जैसे, पूरी धरती ही सुहागिन हो उठती है । आश्चर्य यह है कि इस ऋतु में रमणी के आलिंगन के बिना ही कुरैया के वृक्ष, रमणी के चितवन का इशारा पाए बिना ही तिलक के वृक्ष, और रमणी के पदाघात के बिना ही अशोक के वृक्ष पुष्प-प्रसव करने लगते हैं। और यही बात वकुल वृक्ष के साथ भी होती है कि मद्य-मंडप के बिना ही पुष्पों के उन्माद से भर जाते हैं ।

निदेशक : नालिङ्गितः कुरबकस्तिलको न द्वष्टो
नो ताडितश्च चरणैः सुदृशामशोकः ।
सिक्तो न वक्त्रमधुना बकुलश्च चैत्रे
चित्रं तथापि भवति प्रसवावकीर्णः ।।

वाचिका : यह मधुमास ही है कि स्वर्ण अशोक, रक्त अशोक और नील अशोक एक साथ ही सजग होकर मधुमास के देवता कामदेव के विजय-अभियान में शामिल हो जाते हैं ।

वाचक : हाँ, कामदेव ही वसन्त ऋतु के देवता हैं । जहाँ कामदेव हैं, वहाँ वसन्त

है।

वाचिका : वसन्त के देवता कामदेव की कथा वेद से लेकर पुराणों तक व्याप्त है। कामदेव यानी काम के देवता । अथर्ववेद कहता है कि सृष्टि में सर्वप्रथम काम की ही उत्पत्ति हुई और इसके समान कोई दूसरा देवता नहीं । कामदेव शंकर के कोप से अंगविहीन होकर भी जीवित हैं । रति ही इस देवता की प्रिया है ।

वाचक : वसन्त इसी कामदेव का सहयोगी है और कोकिल तथा सुआ कामदेव के वाहन हैं ।

[शुकों की तेज आवाज के साथ कोकिल का स्वर।]

वाचिका : जब कामदेव कोकिल या सुआ पर चढ़कर सृष्टि में अवतरित होते हैं, तब उनकी अभ्यर्थना में फूलों का साम्राज्य फैल जाता है ।

वाचक : कमल, कनेल, कचनार और गुलाब के फूलों का शासन आरम्भ होता है ।

वाचिका : आम्र बौरों से लेकर माधवी लताओं पर भौरों की पहरेदारी शुरू हो जाती है; जैसे, वसन्त के देवता की साधना के लिए सारे सामान सजकर तैयार हो गये हों ।

वाचक : बात वसन्त की हो, और वसन्त के राजा कामदेव की नहीं, तो मधुमास की बातें आधी-अधूरी ही रह जाती हैं । कहते हैं इस कामदेव की ध्वजा में जो चिह्न है, वह मकर का है । मकर, यानी काम भाव का उद्दाम रूप ।

वाचिका : वसन्त के आते ही आनन्द से भरा यह जगत प्रेम की पुकार कर उठता है ।

वाचक : और प्रेमी चित्त की पुकार पर कामदेव सखा वसन्त के साथ आ पड़ते हैं । वसन्त ऋतु के पंच प्रतीक, चम्पा, केवड़ा, कमल, पाटल और आम्रबौर ही कामदेव के पंच वाण हैं ।

वाचिका : लेकिन कोई-कोई द्रवण, शोषण, तपन, मोहन और उन्माद को ही पंच वाणों के रूप में स्वीकार करते हैं, और यह बात गलत भी नहीं लगती। वसन्त के आते ही उष्णता का आगमन होने लगता है, शीत का शोषण हो जाता है, प्रेमी चित्त में द्रवणशीलता ही नहीं, उसमें उन्माद का संचार हो उठता है, और तभी तो वसन्त की रजनी में, हर ओर ही प्रियतमाओं की पुकार भी संगीतमय हो उठती है,

[गीत सस्वर पाठ।]

स्त्री स्वर 1: 'जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार ।
रंजित कर दे यह शिथिल चरण
ले वन अशोक का अरुण राग
मेरे मण्डन को आज मधुर ला
रजनी-गन्धा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कवरी सँवार ।

स्त्री स्वर 2: धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी !
तारकमय नव वेणी-बंधन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सितघन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकित आ वसंत-रजनी ।

वाचक : मिलन का यह उन्माद तो फागुन के खत्म होते-होते ही आरम्भ हो जाता है । और जब चैत अपनी आँखें खोलता है, तब तो वसन्त की प्रौढ़िवस्था आ गयी होती है । वसन्त फूलों के रंगों से निकल कर, लगन, उबटन, मटकोर, मंडवा, नहछू, बिलोकी, परछन और अठोंगर में गूंजने लगता है

[धीरे-धीरे गीत गूंजता है, तेज होकर मद्धिम पड़ जाता है।]

[गीत।]

धान कूटों हे, दुल्हा, धान कें कूटों हे
अपनी बहिनी केरों ओखेंरी में, धान कूटों हे
कुटबे करबै हे भौजी, कुटबे करबै हे
तोरों बहिनी केरों ओखेंरी में धान कुटबै हे

शहनाइयों के सुरों के साथ वसन्त क्या आता है, वियोगिनियों के परदेशी प्रिय भी तब दौड़े-दौड़े देश आ जाते हैं,

[गीत : सस्वर पाठ।]

पुरुष स्वर: मधु पिए मधुमास आया;
आज पाहुन पास आया ।

पुष्प को आई हँसी क्या

बिछ गये मकरन्द खुल कर
चीर कर नभ नील गिरती
रेशमी यह धूप झर-झर
कूक से अमराइयों को
कर रही बेचैन कोयल
कोहवर में जग लगे यह
ज्यों, सरोवर-स्वर्ण उत्पल;
क्या यहाँ उद्धव करेगा
गोपियों का रास आया ।

क्या कहा हारिल, भ्रमर ने
क्या पपीहे ने कहा कुछ
क्या कहा कचनार ने ही
और महुए ने कहा कुछ
एक आमंत्रण मिला बस
माधवी संग वकुल आया
रस्म जो कुछ था, निभाया
चैत ने ली चुटकियाँ थी
तो नहीं संन्यास आया ।

[गीत, क्रमशः मद्धिम होते हुए आने वाले संवाद में समाप्त ।]

वाचिका : वसन्त का उन्माद सिर्फ पलास के वनों में ही नहीं खिलता है, वह तो सारे दृश्य-अदृश्य जगत को ही अपने आवर्त्त में ले लेता है । एक ओर तो नायिका नायक को किसी तरह अपने पास ही रख लेने के लिए बहाना ढूढनें लगती है,

[लोकगीत।]

स्त्री स्वर : फूलों सें फलों से, हे देवी भवानी फूलों से
दखिन-दिशा नै जैयो बलुमआ दखिन दिशा बड़ भारी
बाघ-सींघ तोरा खय जैथौं हम धनि रहबों दुखारी
भवानी फूलों सें

वाचक : तो, दूसरी ओर नायक में वसन्त का उन्माद, जोगिरा बनकर, नीति-अनीति का उल्लंघन करने लगता है ।

[लोकगीत।]

पुरुष स्वर : 'हरिया के बेटी किरिया बैठल दुकान पर
गला में शोभै सिकरी, मोती छै कान पर
एक नजर जे चल गेलै किरिया के जान पर
फिर बोल-बोल कि सा रा रा रा.....'

[मद्धिम होते हुए समाप्त।]

वाचक : वसन्त का यह उन्माद तो वैशाख तक दौड़ता चला जाता है ।

वाचिका : चारों ओर से बस एक ही पुकार,

सम्मलित : हे कामदेव, अपने पुष्प निर्मित धनुष को उठाओ, मकर की पताका को फहरा दो, चित्त को बाँधनेवाले अपने पंचवाणों को हाथों में ले लो, तुम्हारे शरीर को शिव ने भष्म किया, तो क्या; तुम छिप क्यों रहे हो, यहाँ कोई शिव नहीं है, किसी शिव का भय नहीं, आओ वसन्त के हे देवता, कामदेव ।

वाचक : वसन्त के हास-विलास के उन्माद में तो विवेक का उत्तरदायित्व भी द्वन्द्व में फँसकर रह जाता है । बुद्धि प्रश्न करने लग जाती है ।

[यह गीत सिर्फ लयबद्ध रूप में पढ़ा जाय।]

स्त्री स्वर : वीरों का कैसा हो वसंत ?
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीर वेश में किन्तु कंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

लेकिन दोनों में से कोई कहाँ रुकता है। न चल चितवन रुकता है, ना धनुष बाण ना रस-विलास रुकता है, ना दलित-त्राण । जब इस वसन्त में धनसर-फुलसर की ही गति ही कहाँ रुकती है ? दूर कहीं शीतला के गीत से दिशाएँ भक्ति में डूबी रहती है,

[गीत।]

स्त्री स्वर : गलियाँ गलियाँ घूमै छै शीतला मैया
कोय नै जागै छै आधी रतिया हे,
जो हमें होतियौ मलिनिया के बेरिया
फूलवा चढ़ैतियौं आधी रतिया हे ।

[फेड आउट।]

भय काँपता रहता है, लेकिन इससे कोयल की पुकार रुक नहीं जाती। वसन्त तो शिशिर पर विजय का गीत है ।

वाचिका : लेकिन सृष्टि में ऐसा कौन है, जो थकता नहीं ? वसन्त भी चैत से वैशाख तक हास-हुलास का महोत्सव मनाते-मनाते थक-सा जाता है, और विश्राम की ओर निकल पड़ता है, साधु, संन्यासी-सा। पीछे छूट जाते हैं-- राग-रंग का सजाया हुआ मण्डप और कोयल की यह अनन्त पुकार कि तुम फिर आना वसन्त। हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा में रहेंगे।

[कोयल की प्रतिध्वनित होती कुहुक।]

[समापन संगीत।]

ऊँ श्री चित्रगुप्ताय नमः

[आरम्भ संगीत के अनन्तर हर्षसूचक संगीत।]

नन्दिनी : मेरे स्वामी, आज मैं आपके सामने प्रश्न रूप में खड़ी हूँ, और उत्तर की प्रतीक्षा में भी हूँ।

चित्रगुप्त : (हल्की हँसी के साथ) नन्दिनी, तुम मेरी भार्या हो, उस पर भी ब्रह्म ज्ञान से पूरित, तुम्हें किस प्रश्न का उत्तर चाहिए ?

नन्दिनी : चाहिए, मेरे आराध्य ।

चित्रगुप्त : लेकिन वह कैसी जिज्ञासा है ? कैसा प्रश्न है ?

नन्दिनी : बताऊँगी, लेकिन पहले आप मुझे वचन दें, कि मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे अवश्य ही प्राप्त होगा ।

चित्रगुप्त : मेरी नन्दिनी को यह शंका क्यों है कि मैं किसी बात को उससे छुपा लूँगा !

नन्दिनी : इसलिए, कि मेरे प्राणबल्लभ का नाम चित्रगुप्त है ।

[चित्रगुप्त की खुली हँसी; दूरागत पायलों की आवाज नजदीक होती है।]

चित्रगुप्त : लगता है, एरावती है । नन्दिनी, उसकी उपस्थिति में तुम्हें अपना प्रश्न रखने में कोई संकोच तो नहीं होगा?

नन्दिनी : क्यों होगा, आखिर वह मेरे स्वामी की अर्द्धांगिनी है, दूसरी पत्नी। शंकाएँ तो कमजोर हृदय की सन्तान होती हैं, और वैसे ही हृदय को भयभीत भी करती है । मेरा प्रश्न तो ऐरावती का ही प्रश्न है । अच्छा ही हुआ कि वह भी आ गयी।

[पायल की आवाजें रुकती हैं।]

चित्रगुप्त : (आह्लाद और स्नेह से) आओ, ऐरावती; आओ । कबसे इन

अद्वितीय क्षणों में तुम्हारी अनुपस्थिति समस्त सुख और सौन्दर्य को मलिन कर रही थी ।

ऐरावती : मैं आपके हृदय की पुकार पर ही तो यहाँ आ गयी हूँ । क्या मैं भी यहाँ बैठ सकती हूँ ?

चित्रगुप्त : क्या कहती हो एरावती ! तुम नागवंशी क्षत्रिय कन्या हो, और मेरे साम्राज्य पर तुम्हारा पूरा अधिकार है, यहाँ तुम्हारे मुक्त भ्रमण या आवास पर कैसा प्रतिबन्ध !

ऐरावती : (विरोध का कोमल स्वर) है, और वह है मेरे स्वामी के मन का साम्राज्य, जहाँ स्वामी के सिवा उनकी भार्याओं तक का भी प्रवेश निसिद्ध है ।

चित्रगुप्त : (व्याकुलता) मैं समझ नहीं पा रहा कि चैत की इस अनन्त सुषमा वाली पूर्णिमा में नन्दिनी और ऐरावती के हृदय में यह कैसी शंका जाग उठी है ?

ऐरावती : हाँ, चैत की यह माधवी पूर्णिमा, जो मेरे प्राणेश्वर के नाम से भी विख्यात है, आखिर क्या है इस पूर्णिमा में, जब मेरे प्राणबल्लभ, हमदोनों से भी दूर किसी रहस्यलोक में स्थापित से दिखते हैं ?

नन्दिनी : हाँ, क्या है इस चैत की पूर्णिमा में छिपा, जो मेरे प्राणेश्वर को हमसे कहीं दूर लिए जाता है, हमारे साथ होकर भी हमारे साथ नहीं होते।

चित्रगुप्त : तो, यही है वह प्रश्न, जो तुम दोनों को व्याकुल करता रहता है?

ऐरावती-नन्दिनी : निःसंदेह मेरे प्राणवल्लभ।

चित्रगुप्त : तो, इससे श्रेष्ठ अवसर क्या हो सकता है कि संपूर्ण सृष्टि पर जब चैत के चन्द्रमा की कान्ति बिखरी हुई हो और मैं अपने ही जन्म की कथा अपनी प्रियाओं को सुनाऊँ। सुनो, एक दिन अपना म्लान मुख लिए यमपति मेरे पिता ब्रह्मा के सम्मुख हुए।

[दृश्यांतर।]

यमराज : (विनम्रता से) मैं सूर्यपुत्र यम, प्रजापति ब्रह्मा के चरणों पर मैं अपना मस्तक नत करता हूँ।

ब्रह्मा : (गंभीर स्वर) कहो धर्मराज, क्या तुम्हारे यमपुर में किसी तरह का कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं हो रहा है? क्या भूलोक के किसी विकट प्राणी ने तुम्हारे पुर में प्रवेश पा लिया है?

यमराज : ऐसा कुछ भी नहीं है, प्रजापतिश्री।

ब्रह्मा : तब धर्मराज के चेहरे पर यह श्रीहीनता क्यों है? यम, और व्याकुलता—यह तो होना ही नहीं चाहिए।

यमराज : आपने ठीक ही समझा है, प्रजापतिश्री।

ब्रह्मा : तो, अपने दुख का कारण कहो, धर्मराज!

यमराज : हे सृष्टिसर्जक, आपने ज्ञान, हित, सम्पत्ति और श्रम की श्रीवृद्धि के लिए चार वर्णों का सृजन किया, लेकिन जिस उद्देश्य के लिए यह व्यवस्था बनाई गयी थी, उसमें गड़बड़ियाँ आ गयी हैं। अब वे वर्णवाद में बद्ध होकर मेरी परेशानियाँ बढ़ा रही हैं।

ब्रह्मा : मैं तुम्हारी बातों को नहीं समझ पा रहा हूँ, यमराज।

यमराज : (परेशानी का स्वर) मैं आप को सबकुछ समझा भी नहीं सकूँगा, वर्णकर्त्ताश्री! सिर्फ इतना ही कह सकूँगा कि आजकल भूलोक पर इतने किस्म के भ्रष्टाचार में, प्रजा से लेकर नरपति तक लिप्त है, कि उनका लेखा-जोखा रखना मेरे कर्मचारियों से तो क्या, मुझसे भी संभव नहीं। क्षमा कीजिएगा, मुझे लगता है, आपने सृष्टि का निर्माण कर भारी भूल कर ली है।

ब्रह्मा : (गंभीर स्वर) लेकिन, अब तो भूल हो गयी है। यमराज, क्या तुम्हारे मन में इस संकट के निदान का कोई उपाय भी है? क्योंकि संकट जब जन्म लेता है, तो उसका निदान भी उसके साथ ही प्रकट होता है।

यमराज : हाँ प्रजापतिश्री, मैं यह चाहता हूँ कि इन चार वर्णों से अलग, आप एक ऐसे मानव का सृजन करें, जो चारों वर्णों की विशेषताओं से सम्पन्न हो, और जो किसी एक वर्ण का नहीं, चारों वर्णों को प्रिय हो, जिसकी दृष्टि सम हो। जो मनुष्य के चित्त में समान रूप से व्याप्त हो।

[अन्तराल।]

यमराज : आज किस सोच में पड़ गये, प्रजापतिश्री।

ब्रह्मा : सूर्यपुत्र यमराज, तुम जो चाह रहे हो, क्या वह सहज है? मान भी लो कि मैंने ऐसे एक मानव की सृष्टि कर ही दी, तो क्या ऐसा नहीं होगा कि भूलोक पर नरों में रह कर वह भी अनीति में लिप्त न हो जाए।

यमराज : ऐसा कभी नहीं होगा, सृष्टिकर्त्ताश्री।

ब्रह्मा : (आश्चर्य से) वह कैसे, सूर्यपुत्र! यह तो बिल्कुल असंभव है कि मेरी सृष्टि मानवी रूप में हो और वह अभद्र कार्यों का संयोजक न बने। नर में देवता भी कहाँ पवित्र रह पाते हैं ।

यमराज : प्रजापतिश्री, मैं इसलिए ऐसा कह रहा हूँ कि वह मानव मेरा सखा होगा। मेरे साथ उठने-बैठने वाला। फिर क्या यह बताने की जरूरत है कि काल की पकड़ से करोड़ों कोस दूर बसने वाला जीव भी जब मेरे नाम के स्मरण से सिहर उठता है, तो आपके द्वारा वह मानव मेरे पास ही दिन-रात रहकर अधर्म में लिप्त कैसे रह सकेगा। काल के आगे रह कर कोई भी व्यक्ति दुराचार की कल्पना नहीं कर सकता, देवता भी नहीं।

ब्रह्मा : क्या तुम्हें इस पर पूरा विश्वास है?

यमराज : शत-प्रतिशत, प्रजापतिश्री। मैं नहीं कह सकता कि उस भावी मानव की संतति क्या करेगी, लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे ही साथ बैठकर वह नवमानव, न्यायपथ का ही अनुगामी होगा, पाप-पुण्य का निर्णायक।

[हठात दो कुत्तों की भयावह आवाजें।]

ब्रह्मा : तो, तुम अपने यमलोक के दोनों द्वारपालों के साथ ही आए हो? कितने भयावह हैं, चार आँखों वाले ये 'मारमेय' कुत्ते।

यमराज : लेकिन आपने मेरे संकट के निवारण के लिए मुझे आश्वस्त नहीं किया?

ब्रह्मा : यमराज, तुम सूर्यपुत्र हो, मैं तुम्हें निराश नहीं कर सकता, लेकिन वैसे मानव की सृष्टि के लिए मुझे भी घोर तपस्यारत होना होगा। ग्यारह हजार वर्षों की कठिन तपस्या! लेकिन, धर्मराज, मैं तुम्हारे धर्म की रक्षा के लिए यह भी करूँगा।

[दृश्यांतर।]

चित्रगुप्त : अरे, तुमदोनों इस तरह विवर्ण क्यों हुई जा रही हो?

ऐरावती : विवर्णता की बात नहीं है, मैं तो यह जानने को उत्सुक हूँ कि आखिर धर्मराज ने किस पुरुष के होने की आकांक्षा प्रजापति के समक्ष रखी थी ?

नन्दिनी : और क्या काल को दण्ड की तरह धारण करने वाले धर्मराज यम

को भी किसी मानव के लिए याचना करने की जरूरत होती है?

चित्रगुप्त : तुमदोनों जिस तरह से यमपति के लिए सोच बना रही हो, वैसा ही वह नहीं है। अगर ऐसा होता, तो क्या विजया के कहने पर इन्होंने उसकी माता को नरक से निकाल दिया होता।

नन्दिनी-ऐरावती : विजया?

चित्रगुप्त : (स्मृति में खोया स्वर) हाँ विजया, यमराज ने अपनी सभी पत्नियों में विशेष कर विजया, सुशीला और हेमनाल को नरक झाँकने की मनाही कर रखी थी, क्योंकि वहाँ तो उनके सगे-संबंधी भी हो सकते थे।

नंदिनी-ऐरावती : हाँ, यह तो स्वाभाविक ही है।

चित्रगुप्त : लेकिन विजया ने धर्मराज के आदेश की अवहेलना कर नरक झाँक लिया था, जहाँ उसकी माँ भी नरक-यंत्रणा से पीड़ित थी।

नंदिनी-ऐरावती : फिर?

चित्रगुप्त : फिर तो विजया ने अपनी माँ की मुक्ति के लिए यमराज के सामने जिद ठान ली, और आखिर में नारी हठ के समक्ष धर्मराज को झुक जाना पड़ा।

नंदिनी-ऐरावती : यह तो दोनों की ओर से ही अधर्म हो गया।

चित्रगुप्त : इसी अधर्म से बचने के लिए धर्मराज ने प्रजापतिश्री से ऐसे मानव की सृष्टि की याचना की, जो न्याय का निर्णय कर सके और उनका काम सिर्फ दण्ड देना ही रहे। उनके हाथ में जो कालपाश है, वह उसी दण्डविधान का प्रतीक है।

नंदिनी : लेकिन आप तो प्रजापतिश्री के समक्ष धर्मराज के निवेदन की बात कर रहे थे...

चित्रगुप्त : मैं उसी के बारे में तो बता रहा था, लेकिन क्या करूँ, यही वह समय होता है, जब मैं ही नहीं, मेरे अग्रजश्री यमराज भी भक्तों से घिरे होते हैं।

नंदिनी-ऐरावती : ऐसा क्यों?

चित्रगुप्त : अपने न्याय भवन 'कालीची' में प्राणियों के दण्ड का विधान करने वाले यमराज का अपनी बहन यमुना से मिलना, किसे नहीं भावुक बना जायेगा। न उनके साथ उनका सिंहासन विचार-भू होगा, और न उनके दो सेवक, कालपुरुष और चंडु, और न ही मैं उनके साथ हूँगा। यमुना अपने भाई यम की

आरती उतारेगी और धरती पर नारियाँ इन दोनों की आरती।

[कबूतर की आवाजें।]

नंदिनी-ऐरावती : इस समय कबूतर की ये आवाजें!

चित्रगुप्त : यमराज अपनी बहन यमुना से मिलने भैंस पर नहीं जाते, न ही उलूक या कौवे की सवारी करते हैं, इस अवसर पर कबूतर ही उनका वाहन होता है। श्याम वर्ण की काया पर रक्त वर्ण का वस्त्र, सृष्टि के लिए भले ही भय का कारण हो, मुझे तो इस रूप में ही वह प्रिय हैं—काल नगरी के अधिपति, धर्मराज।

नन्दिनी : लेकिन स्वामी, इन बातों से आप मेरे प्रश्न के उत्तर से ही क्या बचना नहीं चाह रहे?

ऐरावती : लगता तो ऐसा ही है?

चित्रगुप्त : नहीं नन्दिनी, नहीं ऐरावती! वास्तव में मेरी और धर्मराज की कथाएँ अलग-अलग नहीं हैं। मेरे जन्म का कारण भी धर्मराज ही हैं, इसे बता भी चुका हूँ। वह यमपुरपति हैं, तो मैं वहाँ का महामात्य। क्या यह आवश्यक नहीं कि मैं अपनी कथा कहूँ, इससे पूर्व, उसके बारे में भी बता दूँ, ताकि तुम दोनों के मन का उद्वेलन पूरी तरह से शांत हो सके।

नन्दिनी : (प्रश्न के स्वर में) मेरे मन का ?

ऐरावती : वह कौन-सी बात है, जो मेरे मन को उद्वेलित कर रही है ?

चित्रगुप्त : यही कि अपनी भार्या विजया के कहने पर पाप-पुण्य के अनुसार दण्डित करने वाले यमराज ने उसकी माँ को नरक से मुक्ति क्यों दिला दी ?

नंदिनी-ऐरावती : हाँ, मेरे मन में यह शंका जरूर है, लेकिन आपने कैसे जान लिया?

चित्रगुप्त : मैं चित्रगुप्त हूँ, चित्त की गुप्त बातें मेरे समक्ष वैसे ही प्रकट हो जाती हैं, जैसे, पतिव्रता स्त्री, अपने पति के समक्ष उपस्थित होने में कोई संकोच नहीं करती।

नंदिनी-ऐरावती : क्षमा! अनजाने में अपराध हो गया।

चित्रगुप्त : प्रिये! शंका, जिज्ञासा, आवेग, मनुष्य के दूषण नहीं आभूषण हैं शर्त्त यह कि इन्हें समेट कर नहीं रखा जाना चाहिए। तुम्हारी शंकाएँ मिटे, इसी से धर्मराज की यह कथा भी सुन लो। यमराज एक बार अपने पिता सूर्य की पत्नी छाया पर क्रोधित हो उठे।

[संगीत-प्रवाह।]

छाया : (क्रोध में) तुमने मुझे हाकिनी कहा, राक्षिसी कहा। तुम्हें इसकी भी स्मृति नहीं रही कि मैं तुम्हारी माँ हूँ।

यमराज : (आवेश में) हाँ, मुझे यह भी ज्ञात है कि तुम मेरे पिता की दासी पत्नी हो। मेरी माँ की दासी। मेरे सामने कुछ भी अप्रकट नहीं। मन तो करता है, मैं अपने लातों से अभी तुम पर प्रहार करूँ; लो !

[प्रहार की ध्वनियाँ।]

छाया : (चीखती हुई) तुमने मुझ पर लात उठाई, पतित, पापी। मैं जाती हूँ, लेकिन जाते-जाते तुम्हें अभिशाप देती हूँ कि तुम्हारे पाँवों को गलित कुष्ठ हो जाए और उनमें कीड़े लग जाएँ।

[संवाद के साथ एक तेज संगीत उठता है और समाप्त हो जाता है। दूर होती पदचाप।]

[संगीत-प्रवाह।]

चित्रगुप्त : (दुखित स्वर में) छाया का अभिशाप खाली कैसे जा सकता था। प्रताड़ित मन का अभिशाप खाली जाता भी कहाँ है। यमराज के पाँवों को गलित कुष्ठ हो गया।

नंदिनी-ऐरावती : (व्याकुलता में) फिर?

चित्रगुप्त : रोते-बिलखते यमराज पिता सूर्य के पास पहुँचे। द्रवित हुए पिता ने एक ऐसा कण प्रदान किया, जो कुष्ठ में लगे कीड़ों को चुन-चुन कर खा गया। लेकिन धर्मराज का घाव न भर सका। पाप-पुण्य के कर्मों के फलदाता भला अपने ही कर्म के फल से कैसे मुक्त हो सकते। यमराज ने इसे चुपचाप स्वीकार कर लिया। आज भी उनके पाँवों का कष्ट दूर नहीं हुआ है। इसी से आज भी इन्हें श्रृणपाद कहा जाता है।

ऐरावती : [शोकाकुल स्वर।] रुकिए प्राणवल्लभ, यह प्रसंग तो द्रवित करने वाला है।

नंदिनी : (शोकाकुल स्वर) ऐसा प्रसंग, जो प्राणों का रस ही निचोड़ ले।

चित्रगुप्त : प्रिये, और मुझे तो रोज ही करोड़ों प्राणियों की ऐसी कथाओं के साथ होना पड़ता है। नंदिनी, न्याय का आसन सिंहासनासीन को कितना कठोर और स्थिर बना देता है।

ऐरावती : हाँ, न्याय की हल्की-सी चूक किसी को नर्क के द्वार तक भी

पहुँचा दे सकती है, लेकिन हमें अपने प्राणवल्लभ पर असीम विश्वास है।

चित्रगुप्त : तभी तो धर्मराज ने प्रजापति से मेरे जन्म के लिए अनुनय किया था। पूरे ग्यारह हजार वर्षों तक मेरे पिताश्री प्रजापति ने मेरे लिये तपस्या की थी। हजारों वसंत गुजरे।

[कोयल के स्वर।]

[संवाद के अनुसार प्रसंगानुकूल ध्वनियों का उभार।]

हजारों बार ऋतुएँ आती-जाती रहीं। प्रचण्डतम वायु से धरती झुलसती रही।

[हवा और आँधी का ध्वनि-प्रभाव।]

हजारों वर्षाकाल अपनी वर्षा से नदियों और समुद्रों को उन्मादित करते रहे ।

[वर्षा और बिजली की ध्वनियाँ।]

हजारों शिशिर ऋतुएँ आयीं-गयीं, तब एक दिन अचानक ही मैं प्रजापति के हृदय से, संपूर्ण तेज के साथ, बाहर निकल आया। तपस्यारत प्रजापति को तो मेरे प्रकट होने का आभास तक नहीं हुआ।

[संगीत-प्रभाव।]

चित्रगुप्त : सृष्टिकर्त्ता प्रजापति को चित्रगुप्त का प्रणाम स्वीकार हो। मैं आप के नेत्रोन्मीलन की प्रतीक्षा में हूँ।

[तरंगायित ध्वनि-प्रभाव।]

प्रजापति : हे पुरुष, अपने हाथों में कलम-दवात, किताब लिए आप कौन हैं ? आप कौन हैं कि कलम-किताब के साथ कृपाण भी आपकी कमर से बंधी हुई है!

चित्रगुप्त : हे परम पुरुष प्रजापति, मैं चित्रगुप्त हूँ । मैं ही वह हूँ, जो आप के चित्त में गुप्त रूप से निवास कर रहा था। आप की कठिन तपस्या के कारण मुझे प्रकट होना पड़ा है।

प्रजापति : हे पुरुष, चूंकि आप मेरे ही चित्त में निवास कर रहे थे, इसी से इसके बाद भी आप गुप्त रूप से ही प्राणियों के चित्त में निवास करेंगे।

चित्रगुप्त : मैं यह समझ नहीं पाया कि आपके चित्त से निकल कर पुनः प्राणियों के चित्त में गुप्त रूप से निवास करने का प्रयोजन क्या

है ?

प्रजापति : ताकि, हे पुरुष, आप प्राणियों के चित्त की वासनाओं का लेखा-जोखा रख सकें। इससे यमलोक के देवता यमराज को मरणोत्तर प्राणियों के कर्म-फल के निर्धारण में सहयोग मिल सकेगा । ऐसा ही हो, चित्रगुप्त।

चित्रगुप्त : ऐसा ही होगा, हे प्रजापतिश्री !

[संगीत-प्रवाह।]

नंदिनी : तो, आपने अपनी जन्मकथा भी अपने चित्त में गुप्त बना रखी थी।

चित्रगुप्त : मैं अब भी गुप्त हूँ, निराकार।

ऐरावती : तो, अभी मैं अपने प्राणवल्लभ को किस रूप में देख रही हूँ?

चित्रगुप्त : यह भी रहस्यमय है। हे प्राणेश्वरी, हवा से कोई क्या लकीर खींची जा सकती है ? नहीं न, तो क्या उस लकीर से किसी चित्र का ही निर्माण किया जा सकता है ? यह तो बिल्कुल असंभव है।

नंदिता : लेकिन मैं अभी जिस चित्र को देख रही हूँ, वह कम-से-कम हवा की लकीर से तो नहीं बना है।

चित्रगुप्त : यह भी सत्य है, लेकिन पुरुष जो प्रकृति भी है, अदृश्य ही है, पदार्थ के संपर्क में आकर वह रूप को धारण कर लेता है, लेकिन उस रूप में भी पुरुष अदृश्य रूप से ही रहता है। मेरे जन्म को भी इसी रूप में देखो।

ऐरावती-नंदिनी : तो, हम सब क्या हैं?

चित्रगुप्त : तुम दोनों भी वही हो, जो मैं हूँ। हम सबों का यह प्रकट रूप, प्रकृति के आनंद का उत्सव है और कुछ भी नहीं।

नंदिनी : और जब ऐसा ही है, तो मेरे प्राणवल्लभ और यमलोक के अधिपति की पूजा साथ-साथ क्यों?

चित्रगुप्त : (मुस्कुराते हुए) वह इसलिए कि प्राणी अपने चित्त में यह धारण कर सके कि जीवन-मृत्यु साथ-साथ चलते हैं; गति है, तो अगति भी है।

नंदिनी : आश्वस्त हुई, लेकिन एक शंका फिर भी मन में शेष है।

चित्रगुप्त : तो, उसे भी प्रकट कर दो, नंदिनी।

नंदिनी : पृथ्वी पर आप की आराधना, एक ही समय में, लेकिन दो

अवसरों पर क्यों संपन्न होती है?

चित्रगुप्त : पृथ्वी पर मेरे आराधक अपने मातृकुलों की ईष्ट देवी के आराधना काल के अनुसार ही मेरी भी आराधना करते हैं। इसमें भी ऐरावती की संतानें तो मेरे निराकार रूप को स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता अर्पित करती हैं। और नंदिनी से उत्पन्न संतानों को मेरे प्रकट रूप ही प्रिय हैं, जिसकी उपासना वे आलोक-पर्व के अवसर पर करते हैं। नंदिनी, पदार्थ अपने प्रकट रूप के पूर्व जिस अवस्था में होता है, उसे देखा नहीं जा सकता, उसका सिर्फ अनुभव किया जा सकता है और धरती पर प्राणी अपने-अपने ढंग से ही अपने इष्ट देवों की उपासना करते हैं।

ऐरावती : तो क्या, अलग-अलग मातृकुलों से आने वाली संतानों की उपासना को आप एक ही समान ग्रहण करते हैं? आप मेरी इस शंका को भी निर्मूल करें, मेरे प्राणवल्लभ !

चित्रगुप्त : ऐरावती, मैं किसी विशेष कुल की उपासना को ग्रहण करने की जगह, समस्त पृथ्वी के समस्त कुलों की उपासना एक ही भाव से स्वीकार करता हूँ, क्योंकि मैं समस्त प्राणियों के चित्त में एक ही समान गुप्त रूप में निवास करता हूँ। समस्त प्राणियों की काया में मैं गुप्त चित्र की तरह स्थित हूँ, इसी से मुझे कायस्थ भी कहा जाता है और चित्रगुप्त भी। मैं कोई वर्ण नहीं, वर्णातीत हूँ।

नंदिनी-ऐरावती : (आश्चर्य के स्वर में) तो, हम क्या हैं ? हे प्राणवल्लभ, आप हमें किस रूप में प्राप्त हूँ ? मुझे फिर शंका घेर रही है ।

चित्रगुप्त : (प्रसन्न मुद्रा में) सुनो नंदिनी, और सुनो एरावती, मैं तुमदोनों को उस रूप में प्राप्त नहीं है, जब मैं अपने हाथों में 'अग्र संघानी' बही लेकर प्राणियों के पाप-पुण्य का जोड़-घटाव करता रहता हूँ । मैं तो तुम दोनों को चैत के मधुमास की तरह प्राप्त हूँ और तुमदोनों भी मुझे चैत की पूर्णिमा की तरह ही मिली हो, इसी से चैत की पूर्णिमा को चित्रगुप्ती पूर्णिमा भी कहा जाता है।

[दृश्यांतर।]

[कोयल की पुकार पत्तियों की सरसराहटें।]

चित्रगुप्त : (प्रतिध्वनित स्वर में) प्रिये, वह मधुमास ही था, जब मैं प्रजापति के चित्त से प्रकट हुआ था, और वह मधुमास ही था, जब तुम दोनों मेरे जीवन में कोयल और पपीहे की पुकार की तरह आ गयी थीं।

नंदिनी : (आह्लाद का स्वर) हे हमारे प्राणवल्लभ! जिस तरह से आप निराकार होते हुए भी ऊँ ध्वनि के रूप में, जगत में प्रकट हैं, उसी तरह, आप हमदोनों के बीच भी प्रकट रूप में ही रहें।

ऐरावती : (आह्लाद का स्वर) हे प्राणेश्वर, जिस तरह आप प्राणियों को 'ऊँ श्री चित्रगुप्ताय नमः' के रूप में प्राप्त हैं, उसी तरह आप अनादि, अनंत काल तक शिशिर की शीत की तरह नहीं, पूर्णिमा की आभा लिए चैती मधुमास की तरह, हम दोनों से मिले रहें।

चित्रगुप्त : (प्रसन्न स्वर) तथास्तु!

[कोयल की प्रतिध्वनित पुकार के साथ समाप्ति-संगीत।]

फुलवा-कटोरवा

सूत्रधार : इस नाटक की कहानी लोकगाथा की कहानी भर नहीं, यह इतिहास की ऐसी लोमहर्षक घटना है, जो हमारे समाज की जातीय व्यवस्था की क्रूरता को सदियों-सदियों कहती रहेगी, जब तक कि हम इस व्यवस्था की त्रासदी से उबर नहीं जाते हैं ।

[आरम्भ संगीत।]

[चिड़ियों की चहचहाटों के बीच कोयल की कुहुक।]

फुलवा : कटोरबा, कोयल की आवाज उस अमराई से आ रही है, या तुम्हारे मन से ?

कटोरबा : यही तो मैं भी सोच रही थी, फुलेन्द्र, ऐसी मीठी आवाज तो नर कोयल ही निकाल सकता है, मादा कोयल को यह नसीब कहाँ !

फुलवा : ऐसा न कहो, तुम्हारा शरीर तो बारहो मास तक बसनेवाला वसन्त है, और वैसा ही तुम्हारा मन– मंजरी की महक से एकदम महमह। तुम्हारा नाम तो वसन्त के एक फूल पर होना चाहिए था, कटोरबा।

कटोरबा : (पुलक के स्वर में) क्या हुआ, मेरा नाम नहीं, तुम्हारा तो है। (प्यार से) फुलवा !

फुलवा : (गंभीर स्वर में) लेकिन यह नाम तो मेरे लिए गलत ही है न । इस कठोर देह का नाम, फुलवा । (उपेक्षा से) हुंह, यह कोई नाम हुआ! (पुलक से) नाम तो तुम्हारा है !

कटोरबा : (उपेक्षा भाव) कटोरबा यानि कटोरा, यही अच्छा नाम हुआ !

फुलवा : (दुलार से) अरी पगली, यह नाम जिसने भी रखा होगा, उसने तो तुम्हारी आँखों को देखकर ही रखा होगा । कटोरे-सी बड़ी-बड़ी आँखों वाली, कटोरबा !

कटोरबा : (गंभीर होकर) तुम्हें मेरी आँखें बहुत पसंद हैं !

फुलवा : पसन्द की बात करती हो, इन्हें हासिल करने के लिए मुझे प्राणों को गँवाना पड़े, तो इसे भी मैं आसान ही समझूँगा ।

[कोयल के स्वर।]

कटोरबा : सच कहते हो फुलेन्द्र ?

फुलवा : (गंभीरता से) तुम्हें झूठ लगता है, कटोरबा । तब तो तुम्हें हीर की कहानी भी झूठी लगेगी ।

कटोरबा : नहीं फुलेन्द्र, नहीं, मैंने तो यूँ ही कह दिया था । न तो हीर-राँझे की कहानी झूठी, न फुलवा-कटोरबा की ।

[कोयल के स्वर।]

फुलवा : चलो कोयल ने हमदोनों की बातों का समर्थन कर दिया । (अन्तराल) कटोरबा, लौटते वक्त आज मुझसे मिलोगी ?

कटोरबा : नहीं, देखते हो न, आज तो चादर का मोटा गट्ठर थमा दिया है, बाबू ने। आज हाट भी है । आते-आते संझा उतर आयेगी, और फिर तुम भी यहाँ-कहाँ होगे । गाँव जोगने पर निकल गये होंगे ।

फुलवा : (गहरी लम्बी साँस लेते) ठीक ही कहा तुमने । क्या विधि का विधान है, मेरी यह उम्र तो तुम्हें जोगने के लिए है, कटोरबा; लेकिन जोगना पड़ रहा है, गाँव ।

[कोयल के स्वर।]

कटोरबा : सुना, कोयल ने क्या कहा ? कहा, अब कल मिल लेना, नहीं तो हाट से खाली हाथ लौटेगी ।

फुलवा : कटोरबा, मैं इन चादरों को हाट में बेच आऊँ ?

कटोरबा : कुछ दिन रुको तो, यह तो करना ही होगा ।

[दोनों की सम्मिलित हँसी।]

[दृश्यांतर।]

[हुक्का गुड़गुड़ाने की ध्वनि।]

अठखेली : देख दीनू, में तो तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहा हूँ । कटोरबा तुम्हारी बेटी है, तो मेरी भी बेटी है । कहीं ऊँच-नीच की बात हो गयी, तो समाज में कौन ठीक कहेगा !

दीनू : अठखेली, यह तो तुम ठीक ही कह रहे हो, लेकिन मेरा नाम भी दीनू,

हालत भी दीन ही, बेटी को हाट न भेजूँ, तो किसको भेजूँगा। भगवान ने बेटा दिया होता, तो सोचता भी । फिर मैंने तो कटोरबा को बेटे की तरह ही पाला-पोसा है ।

अटखेली : बबूल के गाछ को पीपल समझ कर उस पर जल चढ़ाने से बबूल पीपल नहीं बन जाता, दीनू । दिमाग होश में आ । जात-विरादरी में कोई लड़का ढूँढ़, और कटोरबा के हाथ पीले कर दे, हाँ ।

[हुक्के की गुड़गुड़ाहट।]

अटखेली : तो, क्या सोचते हो, दीनू । अगर तुम कहो, तो कामेसर से बातें करूँ । आखिर कामेसर भी तो अपना ही दोस्त है, इनकार नहीं करेगा, फिर उसका लड़का बदरू खराब तो नहीं ।

दीनू : (आवेश में) क्या कहते हो, अटखेली । मैं अपनी बेटी कटोरबा का ब्याह बदरू के साथ करूँगा ! इससे तो बढ़िया है, कटोरबा आजीवन कुँआरी रहे । बेटा कुँआरा रह सकता है, तो बेटी क्यों नहीं ?

अटखेली : दीनू, तुम पगला गये हो । बेटा-बेटा होता है, और बेटी आखिर बेटी। घर में दामाद आ जायेगा, तो तुम्हारा भी काम संभाल देगा । बेटी से कब तक काम लोगे । सुनो दीनू, खेत तो बैल ही जोतता है, गाय से कहीं खेती का काम होता है !

दीनू : (आवेश में) मुझे नहीं करनी है खेती । द्वार पर गाय रहेगी, तो घर स्वर्ग बना रहेगा । बेटी तो घर की गाय ही होती है, कसाय के हाथ देने को कहते हो, अटखेली !

[हुक्के की गुड़गुड़ाहट।]

अटखेली : (कुछ खाँसते हुए) अब तुम्हारी जो मरजी। लेकिन दीनू, गाँव-जवार में जो कानाफूसी हो रही है, उससे तो गाय की पीठ और पेट पर गोबर ही लगने वाला है, समझ लो ।

दीनू : गोबर ही न लगेगा, गोबर तो वैसे भी पवित्र समझा जाता है । लेकिन तुम्हारे कहने पर मैं घर में सूअर का गू नहीं ला सकता । अगर तुमने इसीलिए मुझे बुलाया था, तो चलता हूँ ।

अटखेली : (समझाने के स्वर में) कहने के लिए तो कुछ और ही बुलाया है, दीनू। शांति से बैठो !

दीनू : (उपेक्षा से) और क्या कहना बाकी रह गया है !

अटखेली : जो समाज कह रहा है, वही । देख दीनू, फुलवा अपनी जात-बिरादरी का नहीं है, और जो जात-बिरादरी का नहीं, उसको तू बेटी कैसे देगा।

अरे दीनू, यह क्या सतयुग है कि ऋषि-मुनि किसी जात-परजात की कन्या को अपनी मान ले, तो कोई बात नहीं । अरे यह कलियुग है, घर तो उजड़ेगा ही, कटोरबा के साथ तेरी भी जिन्दगी उजड़ जायेगी। बस, यही कहने बुलाया था; अब जाना है, तो जाओ।

दीनू : में तो जाऊँगा ही, अटखेली; लेकिन समाज के ऐसे दिन भी जायेंगे, आज न कल; हम और हमारा यह समाज उसे देख सके या न देख सके ।

[चमरखानी जूते की आवाजें; फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[पायल बंधे भागते कदमों की चाप रुकती है, और इसके साथ ही बकरियों का मिमियाते हुए भागना।]

वासमती : (मीठे स्वर में उलाहना।) तुम तो आजकल एकदम बावली हुई जा रही हो, कटोरबा, बड़ी मुश्किल से बकरियाँ समेट पायी थीं, तुम ऐसे दौड़ती हुई आई कि सारी बकरियाँ फिर भाग गयीं ।

कटोरबा : (तेज साँसों को रोकने की कोशिश करती हुई) अरे बकरियाँ भागीं तो क्या हुआ; सुन वासमती, एक दिन तो तेरे गाँव से यह कटोरबा भी भाग जायेगी ।

वासमती : (आश्चर्य) क्या बोलती हो, कटोरबा ! तुम होश में तो हो ?

कटोरबा : होश में ही हूँ, इसीलिए तो बोल रही हूँ । वासमती, पहले तुम बैठ जाओ, तब इक बात बताऊँगी।

वासमती : लो, बैठ गयी ।

[पत्तियों के खड़खड़ाने की आवाजें।]

कटोरबा : ये पायलें देख रही हो, पाँवों में ।

वासमती : तो, इसमें आश्चर्य क्या ! तुमने बिकी चादर से कुछ-कुछ पैसे निकाल कर पायलें भी बना लीं, और क्या ।

कटोरबा : (भावमुग्ध स्वरों में) नहीं रे, ये पायलें तो उसने दी हैं ।

वासमती : (अनहोनी होने से भयभीत) क्या उसने दी हैं, फुलेन्द्र ने ?

कटोरबा : (उसी दशा में) क्या, तुम्हें यह देना अच्छा नहीं लगा ?

वासमती : (गंभीरता से) नहीं सखी, मुझे तो खूब अच्छा लगा, लेकिन जो बात समाज को अच्छी नहीं लगे, वह तो देवता को भी अच्छी नहीं लगती।

[पाँवों को समेटने से पायलों की आवाजें।]

कटोरबा : किसी देवता को अच्छा लगे-न-लगे, मेरे देवता को पसन्द, तो मुझे भी पसंद । सुन लिया न !

वासमती : यह समाज तुम्हारे देवता की पसंद और नापसन्द से नहीं चलता है, कटोरबा । यह समाज आदमी ने मिलजुल कर बनाया है, और उन्हीं की सम्मति से चलता है, जान लो !

कटोरबा : हाँ वसु, लोग अपने घर में कुत्ता इसलिए पालता है कि उसकी हिफाजत हो सके, लेकिन जब वह अपने मालिक पर ही आक्रमण करने लगे, तब भी क्या उसका मालिक उसे अपने घर में ही दूध-भात खिलाता रहता है ?

वासमती : तुम समाज को जिन आँखों से देखने लगी हो, उसमें तुम्हारा स्वार्थ ही बोलता है, कटोरबा ।

कटोरबा : (व्यंग्य स्वर में) स्वार्थ नहीं होता, तो यह समाज नहीं होता, और यह जान लो— यह समाज ऊपर से जितना कदम्ब-सा दिखता है न; वह भीतर से उतना ही नीम है, नीम । एक ऐसा बनैला नीम, जो खून साफ नहीं करता, साफ खून को जहर करता है ।

वासमती : में तुम्हें नहीं समझा सकती । जो मट्ठा शिव-कंठ के जहर को अमृत बनाने वाला होता है न, वही मट्ठा अगर कफ रोग के व्यक्ति को मिल जाए, तो उसकी जान ही गयी समझो ।

[दूरागत बकरी की मिमियाहट।]

कटोरबा : देखो वसु, मैं तुमसे यहाँ बहस लड़ाने नहीं आई । मैं तो तुम्हें यह पायल दिखाने आई थी,जिसको फुलवा ने अपने हाथों से मेरे पाँवों में डाली है । काश ये पायलें मेरे पाँवों से ऐसे ही सट जातीं, जैसे कर्ण की देह से कवच-कुण्डल सटे हुये थे, कि इसे कोई कभी नहीं खोल पाता, मैं भी नहीं । (अन्तराल) अरे, इस तरह मुझे क्या घूर रहे हो? ओह, तो तुम्हारी नजरें मेरी बाँह पर हैं (अन्तराल) अब देख ही लिया है, तो ठीक से देख लो । मैंने अपनी बाँह पर फुलवा के नाम का गोदना गुदवा लिया है । (सहसा अत्यधिक भावुक स्वर) सुनते हैं वसु, गोदना में जिस व्यक्ति का नाम होता है, वह मरने के बाद भी उससे नहीं बिछुड़ता । इसीलिए मैंने अपनी बाँह पर फुलवा का नाम गुदवा लिया है । इसे कोई नहीं जानता, फुलवा भी नहीं । (गहरी उसाँस।)

वासमती : सखी, तुम यह सब क्या कह रही हो, मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ ।

कटोरबा : (खोए हुए स्वर में) यह तो मैं भी नहीं समझ पा रही हूँ । बस इतना जान पा रही हूँ कि मेरे रोम-रोम में फुलवा के फूल खिल गये हैं।

वासमती : चुप ही रहो कटोरबा; चलो, मैं तुम्हें घर पहुँचा आती हूँ ।

कटोरबा : हाँ, चलो, मुझे घर पहुँचा दो, कहीं ऐसा न हो कि घर जाने के बदले मैं फुलवा के घर चली जाऊँ । (बनावटी फीकी हँसी)

[दृश्यांतर ।]

[दरवाजे पर दस्तक की ध्वनियाँ।]

[सन्नाटे में कुत्ते के भूकने की दूर से आती आवाज ।]

फुलवा : (द्वार के पार से आती आवाज) कौन ?

वैशाखी : (स्पष्ट स्वर) में बैशाखी, तुम्हारा दोस्त ।

फुलवा : (दूरागत आवाज) अरे बैशाखी, अभी द्वार खोला ।

[दरवाजा खुलने की आवाज।]

फुलवा : (आश्चर्य में) वैशाखी तुम, इतनी रात में ?

वैशाखी : (गंभीरता से) अब बात ही कुछ ऐसी है कि इस समय ही आना पड़ा।

[दरवाजा और हुड़का बंद करने की आवाजें।]

[कुर्सी-खाट खिसकाने की ध्वनियाँ।]

फुलवा : अब यहाँ बैठ कर निश्चिन्त से बोलो कि कौन-सी बात है ?

बैशाखी : इस तरह, रात में मेरे पहुँचने पर क्या तुम्हें कोई डरानेवाली शंका भयभीत नहीं कर रही है ?

फुलवा : (निर्भय स्वर) नहीं, सन्देह और शंकाओं में कमजोर लोग जीते हैं । बैशाखी, जो व्यक्ति हर आनेवाले समय को कठिन ही मान कर चलता है, उसके लिए सब आसान हो जाता है, इसी से यहाँ न कोई डर है, न कोई शंका । (अन्तराल) अब अगर तुम कहो, तो तुम्हारे आने का कारण भी मैं बता दूँ ?

बैशाखी : क्या, मेरे आने का कारण भी तुम्हें मालूम है ?

फुलवा : हाँ, इसमें चौंकने की क्या बात है । (सहसा गंभीर होते हुए) इसी रविवार को, मेरे और कटोरबा को लेकर पंचायत बैठेगी, इसी की जानकारी देने आये हो न ?

बैशाखी : (चिन्तित स्वर) सिर्फ जानकारी देने नहीं आया, तुम्हें सावधान करने भी आया हूँ, फुलवा । गाँव का क्रोध तुम्हारे खिलाफ इस कदर चढ़ आया है कि तुमने अगर अपने आपको रोका नहीं, तो तुम्हारा दुर्भाग्य भी नहीं रुकेगा ।

फुलवा : (व्यंग्य से) लेकिन, मैंने तो सुना है कि दुनिया का पहला लोकतंत्र इसी महाजनपद में था ।

बैशाखी : इसीलिए तो लोक की माँग पर पंचायत बैठेगी । लोक का मतलब फुलवा और कटोरबा नहीं होता न ।

फुलवा : (व्यंग्य से) तो, लोक में केवल वैसे लोग आते हैं, जो जाति की झूठी मर्यादा की रक्षा के लिए दूसरे के हितों को वेदी पर चढ़ा दे । अगर यही सच है, तो क्या पंचायत ! क्या लोक !

वैशाखी : है फुलवा, है; पंचायत और लोक निरर्थक नहीं । व्यक्ति का लोभ जब मुँह फाड़ कर बोलता है, तब उसे न लोक दिखता है, न पंचायत; जैसे, अभी तुमको ।

फुलवा : बस इतना ही बताने आये थे न ? बता लिया है, तो अब लौट जाओ!

बैशाखी : मेरे लौट जाने से तुम्हारा दुर्भाग्य नहीं लौट जाने वाला, फूलो । विवेक से काम लो, और कटोरबा से कन्नी कटा लो । इसी में तुम्हारा हित है और कटोरबा का भी ।

फुलवा : इस उपदेश के लिए आभार । वैशाखी, अब तुम भी सुन लो कि कटोरबा को मुझसे अलग, तुम्हारी पंचायत तो क्या, यमराज भी नहीं कर सकेगा ।

बैशाखी : तो, ठीक है, मैं चलता हूँ ।

फुलवा : जाने से पहले, एक बात और सुनते जाओ, वैशाखी, यह पंचायत वाली बात अब कटोरबा से भी जा कर मत बता देना ।

बैशाखी : (चिन्तित स्वर) मैं क्या बताऊँगा । गाँव का एक-एक बुतरु तक जान रहा है, बड़े-बूढ़ों की बात छोड़ दो । वैसे जाते-जाते फिर कहे जाता हूँ कि तुम कटोरबा का साथ छोड़ दो । प्रेम, विष बनने लगे, तो छोड़ना ही ठीक ।

फुलवा : ताकि प्रेम को विष बनाने वालों की पूजा होती रहे । (वाक्य को तानते हुए) जाओ वैशाखी ! जो पंचायत गाँव के आपसी झगड़ों पर सही फैसला नहीं सुना पाती, वह दिलों के विश्वास और प्रेम पर क्या फैसला सुनायेगी ।

[दृश्यांतर।]

[चिड़ियों की चहचहाहटें।]

कटोरबा : (स्नेहिल स्वर में) बताओ तो मैं कौन हूँ ?

फुलवा : (भावपूर्ण स्वर) जब तुमने मेरी आँखों पर अपनी अँगुलियाँ रखी थीं, तभी मैंने जान लिया था कि तुम कोई और नहीं, कटोरबा हो । पूछ कर तो तुमने रस को ही बेरस कर दिया। चलो, सामने आकर इधर बैठ जाओ ।

[पायलें पल भर के लिए झनकती हैं।]

कटोरबा : (बाल चंचलता से) लो, बैठ गयी । अब बताओ कि तुमने मुझे क्यों बुलाया है ?

फुलवा : (आश्चर्य से) मैंने तुम्हें बुलाया ? तुमने मेरी आवाज सुनी ?

कटोरबा : कुछ देर पहले कोयल के स्वर में इतनी बेकली से कौन पुकार रहा था ? अब तुम बोलोगे कि मैं नहीं, कोयल बोल रही होगी ।

फुलवा : हाँ, तुमने ठीक कहा, तुमने कोयल की ही आवाज सुन ली होगी ।

कटोरबा : और वह भी इस आषाढ़ के अन्त में ? फुलेन्द्र, अब तो चैत-वैशाख बीत गये; आकाश के बरसने के दिन आ गये हैं ।

फुलवा : हाँ, क्योंकि धरती प्यास से भर जो गयी है ।

[दोनों की खिलखिलाहटें।]

कटोरबा : (अचानक गंभीर स्वर में) लेकिन देखो, पूरा आषाढ़ खत्म हो रहा है, और बादल कहीं नहीं दिखाई देता । लगता है, धरती इस बार भी प्यासी ही रह जायेगी ।

फुलवा : नहीं; ऐसा नहीं कहो । बस एक बार पुरवा के पलटने भर की देर है, बादलों की बारात सज जायेगी, कटोरबा ।

कटोरबा : (उल्लास से) तब तो आकाश में बगुलों की पंक्तियाँ उड़ चलेंगी; धरती जूही की गंध से भर जायेगी; कदम्ब फूल उठेंगे ।

फुलवा : (अत्यन्त भावावेश में) हाँ, हाँ, कटोरबा, सूखी गंडक, तटों को तोड़ कर, बाहर तक बहने लगेगी, दादुर-मोरों के शोर से जंगल भर जायेंगे।

[बादलों की गड़गड़ाहट, बिजलियों की कड़क।]

फुलवा : (हतप्रभ और भयभीत स्वर में) कटोरबा, यह कैसी बरसात है । हठात ही यह कैसा भयानक अंधकार छाने लगा है । चलो, जल्दी भागो; सामने की ठाकुरबाड़ी में घुस जाएँ !

[तेज पदचाप और पायलों की आवाज; फेड आउट।]

[पुनः बादल, बिजली, वर्षा का शोर, जो संवाद के पीछे रह-रह कर तीव्र हो जाता है ।]

फुलवा : अब हमदोनों यहाँ बिलकुल सुरक्षित हैं, चाहे साताहा ही क्यों न लग जाए ।

कटोरबा : लेकिन, घर के लोग जो परेशान हो रहे होंगे ।

फुलवा : तुम घर के लोगों की बात करती हो, हमदोनों की बात को ले कर तो सारा गाँव ही परेशान हो रहा है । तुमने सुना है,

कटोरबा : कि इसी रविवार को, हमदोनों को लेकर, ग़ाव में पंचायत बैठेगी, यही न ! मुझे तो फैसला तक मालूम है, मुखिया कहेंगे—दोनों को गाँव से बाहर कर दिया जाए । (अन्तराल) तो, अच्छा ही होगा । मजदूरों के लिए क्या घर, क्या परदेश !

फुलवा : (भावुकता) कटोरबा, तुम्हारे आने से पहले मैं भी यही सोच रहा था। आश्चर्य है कि तुमने मेरे मन को कैसे पढ़ लिया ।

कटोरबा : हमदोनों अब मन से अलग-अलग रह ही कहाँ गये हैं, एकदम एक हो गये हैं; पानी के रंग की तरह मिल गये हैं, बादल-बिजली की तरह बन गये हैं, फुलेन्द्र ।

फुलवा : तो, ऐसा करें, आज इस ठाकुरबाड़ी में ही, भगवान कृष्ण और राधा को साक्षी बना कर, हमदोनों हमेशा-हमेशा के लिए एक हो जाएँ !

कटोरबा : (भावुकता में) फुलेन्द्र, यही निर्णय लेकर तो मैं भी घर से निकली हूँ। ये देखो, अपनी अंगिया में छिपा कर मैं क्या ले आई हूँ । परसों पंचायत हमदोनों को अलग करने की कोशिश करे; इसके पहले ही तुम मेरा मालिक बन जाओ । क्या देख रहे हो, फुलेन्द्र ! सिंदूर उठाओ, और मेरी माँग में डाल दो !

फुलवा : (असीम भावुकता में) कटोरबा ! जनम-जनम की मेरी प्यास ! मेरी सखा ! मेरी आत्मा !

कटोरबा : (हर्षातिरेक से) तुम आज से मेरे जीवन के मालिक हो, मेरे स्वामी!

फुलवा : (हर्षातिरेक) और आज से तुम मेरे जीवन की अनन्त खुशी । ऋद्धि-सिद्धि भी । सब कुछ !

[बादलों की गड़गड़ाहट और कड़क। बारिश का शोर। फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[भीड़ का बढ़ता शोरगुल।]

बदरी : (गुस्से में) आज पंचायत बैठेगी । अब बैठ कर ही क्या करोगी । कटोरबा तो फुलवा के घर जा बसी है, उसकी जोरू बन कर ।

केदार : बाप ने जोर कर नहीं रखा, तभी तो फुलवा ने उसे जोरू बना लिया।

बदरी : (गुस्से में) तो क्या, इसीलिए खामोश बैठ जाएँ कि फुलवा-कटोरबा साँय-बहू बन गये हैं । क्या इसीलिए उन दोनों को छोड़ दिया जाए? बोलो केदार, बोलो।

भीड़ : एकदम नहीं, एकदम नहीं। बदरी, यह जातियों के मान-मर्यादा का ही प्रश्न नहीं है, पूरे गाँव और टोले की इज्जत का सवाल है ।

बदरी : (तेज-तेज स्वर में) तो, मैं आप लोगों से ही पूछता हूँ कि गाँव के मान-मर्यादा को भंग करनेवाले फुलवा-कटोरबा के साथ क्या किया जाए ?

केदार : (गुस्से में) अब इस बात को लेकर किसी से कुछ पूछना भी बचा है क्या ! बदरी, उन दोनों को, सियार और कटाहा कुत्तों की तरह, गाँव से बाहर खदेड़ दो ।

भीड़ : एकदम सही, एकदम सही । हमलोग इन्ही लाठियों से गाँव की इस काली कहानी का अंत लिख देंगे ।

[एक साथ पचासों लाठियों के टकराने की आवाजें।]

बदरी : तो, ठीक है, हमलोग अभी फुलवा के घर की ओर चलेंगे, जहाँ कटोरबा विक्टोरिया बनी बैठी है ।

भीड़ : हाँ, हाँ, चलो ।

[हो हल्ला करती भीड़ की आवाज दूर जाती हुई : फेड आउट।]

[दृश्यांतर।]

[कुत्तों के रोने की आवाजें उभरती हैं।]

कटोरबा : इन कुत्तों को क्या हो गया है ! भोर से ही रोना शुरू किया है, तो अभी तक कंठ फाड़े रो रहे हैं।

फुलवा : आज कल के कुत्ते, महिना देखकर, थोड़े ही रोते हैं । ठहरो, अभी मैं इन्हें भगाये देता हूँ । (जोर के स्वर में) हट, हट, हट ।

[कुत्तों का दूर जाता रुदन और नजदीक आता भीड़ का शोर ।]

कटोरबा : (चौकन्ने स्वर में) यह कैसा शोरगुल है ?

फुलवा : भीड़ का शोरगुल है, इधर ही आता लगता है । कहीं.....

कटोरबा : हो सकता है, गाँव वालों ने हमदोनों के खिलाफ मोर्चा बना लिया हो।

[भीड़ का शोरगुल नजदीक होता जा रहा है, जिसमें फुलवा-कटोरबा के नाम भी उभरते हैं ।]

फुलवा : (हड़बड़ाहट) तुमने गलत नहीं कहा, कटोरबा । तुम घर के अन्दर ही रहो । लकड़बग्घों के इस झुण्ड के लिए मेरी यह लाठी ही काफी है।

[भीड़ की आवाज एकदम सामने होकर रुकती है ।]

बदरी : (गरजते हुए) फुलवा, गाँव-जवार की मर्यादा का खयाल करते हुए, कटोरबा को अपने घर से बाहर निकाल दो !

केदार : हाँ, हाँ, निकालो; नहीं तो गाँव से निकलो ।

फुलवा : (गुस्से में) बदरी, मुँह को बन्द रखो, नहीं तो लोहे के तार से मुँह सी दूँगा । और केदार, तुम भी जीभ को कुदाल की तरह मत चलाओ। मैंने भी गंडक का ही पानी पीया है, पोखर, तालाब का नहीं ।

बदरी : कुल का कुलांगार है यह, ऐसे नहीं मानेगा । गाँववालो, लात का देवता, बातों से नहीं समझेगा । इसके बदन पर लाठियों की जरूरत है ।

भीड़ : हाँ, मारो-मारो; गाँव को वेश्यालय बनाना चाहता है ।

[झटके से दरवाजा खुलने की आवाज।]

कटोरबा : (तमतमाते स्वर में) फिर जो आगे एक भी कुशब्द निकला, तो इसका भी खयाल नहीं रखूँगी कि चौधरी के बेटे हो । तुमलोगों की लाठियों से मेरी चूड़ियाँ नहीं डरनेवालीं ।

बदरी : केदार, फुलवा को तो बाद में देखेंगे, पहले कटोरबा को ही ठिकाने लगाओ !

भीड़ : हाँ, हाँ, मारो । इस चुड़ैल ने गाँव में जात-परजात को कलंकित किया है; यह रहेगी, तो यह गाँव वर्णसंकरों का इलाका बन जायेगा ।

[पचासों लाठियों के टकराने की आवाजें।]

फुलवा : (उन्मादित स्वर में) अरे कमीनों, तुम लोगों ने एक औरत पर लाठियाँ बरसाई हैं, तुम्हारी लाशों को तो कौवे-कुत्ते भी नहीं खाना चाहेंगे । (अन्तराल) कटोरबा, तुम किधर हो ? अरे, तुम तो खून से लथपथ हो गयी हो ।

कई स्वर : देखते क्या हो, अब फुलवा को भी लाठियों से पीट-पीट कर कटोरबा के ऊपर बिछा दो । आज इसे पता चले कि जाति-बिरादरी तोड़ कर

मोर पहनने का क्या मजा होता है ।

[लाठियों के बजड़ने की तेज आवाजें।]

फुलवा : (गुस्से में उन्माद के स्वर) बदरी, मेरी छाती के नीचे कटोरबा की लहुलुहान देह पड़ी है, नहीं तो मैं तुम्हारे साथ तुम्हारी वर्ण-व्यवस्था की भी यहीं कब्र खोद देता ।

कटोरबा : (कराहते स्वर में) इन सबसे क्या कुछ कहना, फुलेन्द्र; ये तो अपनी ही कब्र पर नाचते भूत-बैताल हैं, एक दिन अपने गाँव को ही जीती-जागती कब्र बना डालेंगे ।

बदरी : (तेज स्वर में) लाठियों को रुकने नहीं दो । अभी बोली बंद नहीं हुई (लाठियों की आवाज होती रहती है, और उसके बीच से फुलवा-कटोरबा के निकलते करुण स्वर शांत पड़ जाते हैं।)

बदरी : (गौरव से) चलो, कहानी खत्म हो गयी ।

[करुण संगीत-प्रभाव।]

सूत्रधार : आज कटोरबा नहीं है, फुलवा भी नहीं है, लेकिन अपनी कहानी में वे आज भी जीवित हैं, ये मर भी नहीं सकते । फुलवा और कटोरबा की कहानी जातियों की क्रूरता को कहने के सदियों तक यूँ ही जिन्दा रहेगी ।

[समाप्ति संगीत।]

❐❐